CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६.५

३०१२

भगवान् महावीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३०९२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन विश्व भारती प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान महावीर

आचार्य तुलसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष में

भगवान् महावीर : आचार्य तुलसी

प्रथम संस्करण २२०० प्रति १९७४
द्वितीय संस्करण २००० प्रति १९७८-७९

सम्पादक : मुनि दुलहराज

मूल्य : पाँच रुपये/द्वितीय बार, १९७९/प्रबन्ध सम्पादक : श्रीचन्द रामपुरिया, कुलपति, जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान)/ प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं (राजस्थान) ३४१३०६/मुद्रक : एस० नारायण एण्ड सन्स ७११७/१८ पहाड़ी धीरज दिल्ली-११०००६ आर्थिक सहयोग : श्रीमती भूरीदेवी सागरमल दुग्गड़ चैरिटेबिल ट्रस्ट, अहमदाबाद ।

BHAGWAN MAHAVIR : Acharya Tulasi Rs. 5.00

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

भगवान् महावीर के जीवन-वृत्तांत और विचारों को संक्षेप में उपस्थित करने वाली यह पुस्तक लघुकाय होने पर भी अनेक विशिष्टताओं से युक्त है। भगवान् महावीर के विषय में आवश्यक जानकारी देना और उनके विचारों को सरल रूप में जनता के सामने ला देना ही पुस्तक का लक्ष्य है। साम्प्रदायिक मतभेदों की बातें या तो आई ही नहीं है अथवा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों का समभाव से उल्लेख कर दिया गया है। भगवान् महावीर के व्यक्तित्व और कर्तृत्व का परिचयात्मक यह जन्म-भोग्य संस्करण अपने आप में बड़ा रोचक और प्रभावशाली भी है। अन्त का सूक्ति-संग्रह महावीर की चिन्तन-धारा, विचार-क्रान्ति और उनके आध्यात्मिक उद्घोष को उपस्थित करता है।

भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी के अवसर पर इसका प्रकाशन उस महान् पुरुष के प्रति एक अति भक्ति-भाव भरी श्रद्धांजलि है। 'जैन विश्व भारती' द्वारा इसका प्रकाशन जन-भोग्य साहित्य प्रकाशन की दिशा में प्रथम चरण-विन्यास है। इसके साथ-साथ इसी संस्थान द्वारा प्रकाशित मुनि श्री नथमलजी लिखित 'श्रमण महावीर' ग्रंथ इस पुस्तक का परिपूरक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस पुस्तक के प्रकाशन-कार्य के निमित जिन-जिन महानुभावों की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है, उनके नाम यथास्थान उल्लिखित हैं। हम उन सब के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

आशा है भगवान् महावीर के मुख्य जीवन-प्रसंग, सिद्धांत तथा वाणी को प्रस्तुत करने वाली इस सरल सुन्दर पुस्तक का सर्वत्र अच्छा स्वागत होगा।

श्रीचन्द रामपुरिया
निदेशक
आगम और साहित्य प्रकाशन

दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुस्तक के प्रति

भगवान् महावीर का जीवनवृत्त अहिंसा का एक वृत्त है। उनका साम्ययोग इतना सघन हो गया कि उसमें हिंसा के लिए अवकाश ही नहीं रहा। साम्ययोग सत्यं, शिवं, सुन्दरं की त्रिपुटी का सहज समन्वय है।

भगवान् महावीर का जीवन जितना सहज, ऋजु और स्वतः प्रमाण है उतना ही उनके जीवन का सहज, ऋजु और स्वतः प्रमाण चित्रण प्रस्तुत कृति में हुआ है। आचार्य श्री तुलसी भगवान् महावीर की समन्वय-परंपरा के सूत्रधार हैं। उन्होंने महावीर को शब्दों के माध्यम से नहीं, किन्तु अन्तरात्मा की अनुभूति से समझा है। उनकी आन्तरिक अनुभूति ही इस कृति में शब्दों के माध्यम से अभिव्यंजित हुई है। इस समग्र कृति में जितना विनम्रभाव महावीर के प्रति प्रकट हुआ है, उतना ही यथार्थ के प्रति और उतना ही अभिव्यंजना के प्रति।

शब्द की अल्पता में अर्थ की महानता की खोज इस कृति का अभीष्ट नहीं है। इनका अभीष्ट है, महावीर की आत्मा की खोज, जो इसकी लघुता में भी उस महानता को प्रगट कर रही है।

—मुनि नथमल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रास्ताविकम्

भगवान् महावीर व्यक्ति नहीं, सत्य हैं । उनके प्रति होने वाली निष्ठा व्यक्ति-निष्ठा नहीं, सत्य-निष्ठा है । भगवान् का समग्र जीवन सत्य की शोध, उपलब्धि और अनुदान का जीवन है । साधना के इतिहास में भगवान् जैसे दीर्घ तपस्वी विरल ही मिलते हैं । काल की लम्बी अवधि ने उनकी उपलब्धियों पर आवरण-सा डाल दिया । महावीर ने अनेकान्त के उस महान् सिद्धान्त की व्याख्या की, जिसमें विश्व की समस्त विचार-धाराओं के समन्वय की क्षमता है । अहिंसा और अनेकान्त के महान् प्रवक्ता के रूप में उनकी प्रतिमा तभी उभर सकती है जब हम स्वयं अहिंसा और अनेकान्त को समझें और जीवन-व्यवहार में उसे क्रियान्वित करें ।

भगवान् महावीर की पचीसवीं निर्वाण शताब्दी का अवसर बहुत ही पुण्य अवसर है । इसका लाभ उठाकर भगवान् महावीर की काल के आवरण से ढकी हुई प्रतिमा को अनावृत करना आवश्यक है । इस अनावरण की प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिए भगवान् के जीवन और सिद्धान्त दोनों का मूलस्पर्शी बोध अपेक्षित है । इस लघुकायजीवन-दर्शन में मैंने उस अपेक्षा को पूर्ण करने का प्रयत्न किया है ।

आज का युग प्रवृत्ति-बहुलता का युग है । भगवान् महावीर ने निवृत्ति का जीवन जीया था । हम लोग व्यवहार के स्तर पर सोचते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब प्रवृत्ति और निवृत्ति को विभक्त कर देते हैं। भारतीय जीवन में पुरुषार्थ की प्रेरणा देने वालों में भगवान् महावीर अग्रणी हैं। निवृत्ति स्वयं पुरुषार्थ है और पुरुषार्थ के बिना वह प्राप्य भी नहीं है।

भगवान् के जीवन-दर्शन में शाश्वत और सामयिक—दोनों सत्य व्यक्त हुए हैं। आज का यथार्थवादी युग उनके द्वारा अभिव्यक्त यथार्थ की क्रियान्वित का उपयुक्त समय है। स्वतन्त्रता, सापेक्षता, सहअस्तित्व, समन्वय, समत्वानुभूति जैसे तत्त्व आज जाने-अनजाने लोकप्रिय बनते जा रहे हैं। इस सहज धारा में हम एक धारा और मिलाएं, जिससे वह महाप्रवाह बन मानव जीवन की उर्वरा को अहिंसा और अनेकान्त का सिंचन दे सके। वह सिंचन हम सबके लिए, समूचे विश्व के लिए, कल्याणकारी होगा।

—आचार्य तुलसी

अणुव्रत विहार
नई दिल्ली
१-१०-७४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम

१. भगवान् महावीर से पूर्व १

श्रमण परम्परा और भगवान् पार्श्व

भगवान् महावीर के युग की परिस्थिति

वज्जी गणतंत्र

२. गृहवास के तीस वर्ष ६

सिद्धार्थ और त्रिशला

सूर्योदय की प्रतीक्षा

सूर्योदय

स्वप्न-दर्शन

प्रतिज्ञा

अद्भुत शिशु

जन्म-कल्याण

वर्द्धमान

अभय और पराक्रम

विरक्ति और विवाह

जल में कमल

महाभिनिष्क्रमण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. साधना-काल ४०

तपोभूमि

सब जीव समान

चन्दनबाला

४. कैवल्य और धर्मोपदेश ५७

साधना की सिद्धि

प्रथम प्रवचन

चतुरंग मार्ग

मुनि-धर्म

गृहस्थ-धर्म

अन्तर्मुखी दृष्टिकोण

मानवीय एकता

आत्मा ही परमात्मा

पुरुषार्थ

ग्यारह स्थापनाएं

५. धर्मतीर्थ-प्रवर्तन ७२

विविध धर्म

अनेकान्त का मंत्रदान

संघ-व्यवस्था

६. मूल्य-परिवर्तन ८०

धर्म का सामाजिक मूल्य

७. वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में जैन धर्म का योगदान ९४

अहिंसा और कषाय-मुक्ति

अहिंसा और स्वतन्त्रता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा और समता
अहिंसा और सह-अस्तित्व
अहिंसा और समन्वय
तत्त्व-दर्शन
जीव और अजीव
आश्रव और संघ
दु:ख-चक्र
दु:ख-चक्र से मुक्ति का उपाय
तत्त्व-दर्शन का प्रयोजन
कर्म सिद्धान्त
पुरुषार्थ और कर्म की सापेक्ष शक्ति
कर्म-परिवर्तन के चार सिद्धान्त

८. निर्वाण ११४

९. दर्शन और उद्बोधन ११८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१

भगवान् महावीर से पूर्व

श्रमण परम्परा और भगवान् पार्श्व

द्रव्य-शून्य पर्याय और पर्याय-शून्य द्रव्य कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। द्रव्य इस सत्य की प्रतिध्वनि है कि अनित्य प्रतीत होने वाली दीपशिखा नित्य भी है। पर्याय इस सत्य की प्रतिध्वनि है कि नित्य प्रतीत होने वाला आकाश अनित्य भी है। स्थायित्व और परिवर्तन—ये दोनों मिलकर ही विश्व की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। नाम और रूप—ये दोनों परिवर्तनशील हैं। बहुत लोग पूछते हैं—क्या जैन धर्म अनादि है? यदि वे पूछें—क्या धर्म अनादि है, तो कहा जा सकता है कि वह अनादि है। वह वस्तु का स्वभाव है। वह न कभी बना और न कभी समाप्त होगा, इसलिए वह अनादि है। धर्म शब्द अनादि नहीं है। जैन शब्द भी अनादि नहीं है। कोई भी नाम अनादि नहीं हो सकता। जगत् में जितने भी नाम हैं वे सब आदि हैं। जैन नाम बहुत प्राचीन नहीं है। किन्तु इसे जिस परम्परा का उत्तराधिकार प्राप्त है वह बहुत प्राचीन है। जैन धर्म श्रमण धर्म का उत्तराधिकारी है। श्रमण परम्परा भारतीय धर्म और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तत्त्व-चिन्तन की बहुत प्राचीन परम्परा है। इसका उन्नयन अर्हतों ने किया है। ऋषभ प्रथम अर्हत् हैं। उन्होंने प्रजाहित के लिए कृषि, व्यवसाय और शिल्प का प्रवर्तन किया। समाज-व्यवस्था के लिए शासनतन्त्र की स्थापना की। आत्मिक विकास के लिए वे मुनि बनकर अर्हत् हुए। फिर उन्होंने धर्म का उपदेश दिया। वह उस समय की घटना है जब भारतीय जीवन प्रगति के प्रथम सोपान पर था। व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन के साँचे में ढल रहा था। अरण्यवास ग्रामवास में बदल रहा था। अर्हत् ऋषभ ने व्यक्ति-व्यक्ति में अर्हत् होने की अर्हता जगाई। अर्हतों की परम्परा गतिशील हो गई। उसी परम्परा में अर्हत् पार्श्व हुए। ये ऐतिहासिक पुरुष हैं। अन्य अर्हत् प्रागैतिहासिक माने जाते हैं। भगवान् पार्श्व ने सामुदायिक साधना को बहुत शक्तिशाली बनाया। अज्ञानपूर्ण ढंग से तपस्या कर शरीर को सताने की साधना-पद्धति का उन्होंने विरोध किया। इस विरोध के कारण उन्हें कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं, पर अहिंसा और मैत्री के पथ पर चलने वाला हिंसा का विरोध करता है और उसके फलस्वरूप आने वाली कठिनाइयों को झेलता है।

भगवान् पार्श्व के समय में श्रमणों का शासन बहुत प्रभावी हो गया। उसका प्रभाव अहिंसा का प्रभाव था। इसलिए भगवान् पार्श्व बहुत लोकप्रिय हो गए। श्रमण और ब्राह्मण दोनों परम्पराओं के अनुयायी उनकी महानता को स्वीकार करने लगे। भगवान् महावीर ने भगवान् पार्श्व के लिए 'पुरुषादानीय'—लोक-पूज्य, लोक-नेता विशेषण का प्रयोग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया। महाराज चेटकी, भगवान् के माता-पिता—ये सब भगवान् पार्श्व के प्रशिष्य थे। भौतिकता और प्रकृति-पूजा की धारा के सामने अध्यात्म और आत्मोदय की धारा को प्रवाहित करने का महान् कार्य भगवान् पार्श्व ने किया था और उसे जन-व्यापी बनाया था। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध तथा अन्य अनेक श्रमण-शासन के तीर्थंकरों को उनकी महान् उपलब्धियाँ विरासत में प्राप्त हुई थीं।

भगवान् महावीर के युग में सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति

परिवर्तन जगत् की नियति है, ऐसी नियति कि जिसे कोई टाल नहीं सकता। जहाँ परिवर्तन है वहाँ उतार-चढ़ाव भी अनिवार्य है। इस नियति-चक्र में कोई भी एकरूप नहीं रह सकता। भगवान् पार्श्व ने अहिंसा और संयम की जो धारा प्रवाहित की थी, वह उनके निर्वाण की दो शताब्दियाँ बीतते-बीतते शिथिल होने लगी। भगवान् महावीर साधना के क्षेत्र में आए, तब सामाजिक मूल्य विषमता से आक्रांत हो गए थे। समाज दंडशक्ति के द्वारा शासित हो रहा था। राजे नरदेव बन चुके थे। जनता का काम उनका शासन स्वीकार करना ही था। उनके अत्याचारों को सहना जनता का धर्म माना जाता था। राज-पुरोहितों ने राजों के प्रति इतना श्रद्धाभाव निर्मित किया कि जनता राजाज्ञा को ईश्वरीय आदेश मानने लगी। उनका विरोध करना नरक के द्वार को उद्घाटित करना था।

धन की पूजा भी बहुत बढ़ गई थी। कुछ लोग सम्पन्न थे, कुछ विपन्न। संपन्न मनुष्य विपन्न मनुष्यों को खरीदकर अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दास बनाते थे। उनका मूल्य खरीदे हुए पशुओं से अधिक नहीं होता था। स्वामी को उन्हें दंडित करने का पूरा अधिकार होता था। राज्य-सत्ता और धनशक्ति—दोनों मानव-मानव के बीच दीवार पैदा कर रहीं थीं। मानवीय एकता और समता का सिद्धान्त उनकी ओट में छिप रहा था। जातिवाद की धारणा ऊंच-नीच के भेद-भाव को पुष्टि दे रही थी। शूद्र नीचा समझा जाता था, अन्त्यज वर्ग उससे भी नीचा। मनुष्य का मूल्य एक बुद्धिमान् प्राणी होने के नाते नहीं था। दंडशक्ति, धनशक्ति और जन्मना-प्राप्त जाति के आधार पर मनुष्य मूल्य पाता था। इस परिस्थिति से सम्पन्न वर्ग में अहंभाव और विपन्न वर्ग में हीनभाव उत्पन्न हो गया था। इसमें कर्मवादी मान्यता भी कुछ योग दे रही थी। विपन्न मनुष्य अशुभ कर्म लेकर जन्मा है। उसे इस जन्म में उस अशुभ कर्म का फल भुगतना है इसलिए उसे कुछ दिए बिना शान्तभाव से अपना ऋण चुका देना चाहिए।

शिक्षा का प्रसार व्यापक नहीं था। वह बड़े-बड़े लोगों को सुलभ थी। साधारण आदमी अपनी जीविका के अर्जन में ही लगा रहता था। उसकी चेतना जागृत नहीं थी, इसलिए वह हर परिस्थिति को मौन-भाव से सह लेता था।

धर्म की दो मुख्य धाराएं थीं—श्रमण और वैदिक। श्रमणों के अनेक संघ थे। उन संघों के महाप्राज्ञ आचार्य तीर्थंकर कहलाते थे। वैदिक परम्परा के भी अनेक सम्प्रदाय थे। वैदिक ऋषि ईश्वरवादी थे। उपनिषद् के ऋषि ब्रह्मवादी थे। श्रमणों में भी कुछ आचार्य ईश्वरवादी थे, किन्तु बहुत सारे आत्मवादी और निर्वाणवादी थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म के सभी आचार्य विश्व के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित करने का प्रयत्न कर रहे थे। कुछ आचार्य ध्यान, तप आदि की दीर्घकालीन साधना के द्वारा सत्य के साक्षात्कार का प्रयत्न कर रहे थे तो कुछ उपासना और मंत्र-शक्ति के माध्यम से कर रहे थे। मंत्र-साधना और शक्ति की उपासना करने वाले देवता की संतुष्टि के लिए होने वाली हिंसा को विहित मानते थे, फलस्वरूप पशु की बलि देते थे। स्वर्ग के लिए यज्ञ-याग करते थे। वे स्नान के द्वारा शुद्धि का प्रतिपादन करते थे। 'शरीर को कष्ट देने से मुक्ति होती है'—इस सिद्धान्त के आधार पर अनेक तपस्वी पंचाग्नि तप की साधना करते थे। वे अपने आसन के चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर लेते और ऊपर से सूर्य का आतप सहते थे। कुछ तपस्वी लोहे की नुकीली शूलों की शैया बनाकर उस पर लेटे रहते थे।

धर्म की प्रधानता का युग था। राजा और प्रजा—सब धर्म में विश्वास करते थे। धर्म की सत्ता राज्य की सत्ता से ऊपर थी। धर्म को अस्वीकार करने वाले व्यक्ति भी थे, पर उनकी संख्या बहुत कम थी। समाज में उन्हें प्रतिष्ठा नहीं मिलती थी। इस परिप्रेक्ष्य में धर्म और धार्मिक को बहुत मूल्य दिया जाता था। सभी परम्पराओं में साधुओं की बहुलता थी। सैकड़ों-हजारों साधुओं के समूह एक गांव से दूसरे गांव में परिव्रजन करते थे। विभिन्न सम्प्रदायों के साधु परस्पर मिलते थे, तत्त्वचर्चा और एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते थे। करते थे।

शक्ति के उपासक वीतरागता को अनिवार्य नहीं मानते थे। आध्यात्मिक धारा में वीतराग होना अनिवार्य समझा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता था। 'राग-द्वेष को क्षीण किए बिना कोई व्यक्ति मुक्ति नहीं पा सकता'—यह उनका दर्शन था।

भौतिकता और इन्द्रिय-परकता—ये मानव समाज की स्वाभाविक प्रवृत्तियां हैं। वे मनुष्य को संघर्ष की ओर ले जाती हैं। संघर्ष का बिन्दु प्रखर होता है, तब अध्यात्म और परमार्थ की सहज मांग उपस्थित होती हैं। वह सूचना है किसी महान् आध्यात्मिक नेतृत्व के उदय की। वह सूचना है किसी पुरुषार्थ के प्रस्फुटन की। पृष्ठभूमि तैयार होती है, तब ऊँचाई अपने आप आती है। कारण-सामग्री पूर्ण होती है, तब कार्य अपने-आप बनता है।

वज्जी गणतन्त्र

पच्चीस सौ वर्ष पहले का बृहत्तर भारत छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। उस समय यह देश आज से अधिक विशाल था, पर सबको एक सूत्र में बांधने वाला कोई विशाल व्यक्तित्व नहीं था। पुरानी भाषा में कोई चक्रवर्ती और आज की भाषा में कोई केन्द्रीय नेतृत्व नहीं था।

पूर्वी देशों में दो शासन पद्धतियां चल रही थीं। अंग, मगध, वत्स आदि देश राजतन्त्र द्वारा शासित थे। काशी, कौशल, विदेह आदि देशों में गणतन्त्र की स्थापना हो चुकी थी। उस समय दो प्रसिद्ध गणतन्त्र थे—एक लिच्छवियों का, दूसरा मल्लों का। गणतन्त्र राजतन्त्र का उत्तर चरण और जनतन्त्र की पूर्व-पीठिका है। लिच्छवियों ने राज्य-शक्ति को संगठित करने के लिए गणतन्त्र की स्थापना की। इसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापना का मुख्य श्रेय विदेह के अधिपति महाराज चेटक को था। इसमें नौ लिच्छवि और नौ मल्ल—इन अठारह राज्यों का प्रतिनिधित्व था। इनमें विदेह का राज्य सबसे बड़ा था। उसकी राजधानी थी वैशाली।[1] उसके तीन भाग थे। पहले भाग में स्वर्ण-कलश वाले चौदह हजार घर थे। मध्य भाग में रजत-कलश वाले चौदह हजार घर थे। अन्तिम भाग में ताम्र-कलश वाले इक्कीस हजार घर थे। इन भागों में क्रमशः उच्च, मध्यम और नीच वर्ग के लोग रहते थे।

वैशाली केवल लिच्छवियों की ही राजधानी नहीं थी, वह सम्पूर्ण वज्जी संघ की राजधानी थी। उसके चारों ओर दो-दो मील के अन्तराल से चार परकोटे थे। उनमें स्थान-स्थान पर दरवाजे और गोपुर बने हुए थे। उस गणतन्त्र में उग्र, भोज, राजन्य, इक्ष्वाकु (लिच्छवि[2]), ज्ञात और कौरव—ये छह कुल संगठित थे।

मल्लों का गणतन्त्र दो भागों में बंटा हुआ था। एक भाग उत्तर-पश्चिम में था। उसकी राजधानी कुशीनारा थी। दूसरा भाग दक्षिण-पूर्व में था। उसकी राजधानी पावा थी। मल्ल गणराज्य पूर्व में गंडकी नदी, पश्चिम में गोरखपुर के आसपास, उत्तर में नेपाल और दक्षिण में गंगानदी तक फैला हुआ था।

---

१. वर्तमान में इसकी पहचान मुजफ्फरपुर जिले के रत्ती परगने में स्थित 'बसाढ' गांव से की जाती है।

२. लिच्छवि, वज्जी (संस्कृत—वृज्जि) और वैशालिक—ये तीनों पर्यायवाची हैं। मनुस्मृति १०।१० में लिच्छवियों को 'व्रात्य' कहा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मल्ल गणतन्त्र का स्वतन्त्र अस्तित्व था, फिर भी उसके गणनायक शक्तिशाली वज्जी गणतन्त्र के सदस्य थे। उन्हें मत देने का भी अधिकार था। वज्जी गणतन्त्र गंगा के उत्तर, विदेह में था। मगध और वज्जी गणतन्त्र के बीच गंगानदी की सीमा थी। उसमें सम्मिलित राजा गणनायक कहलाते थे। महाराज चेटक उस गणतन्त्र के अध्यक्ष थे। वे बहुत बुद्धिशाली और पराक्रमी थे। गणनायकों की परिषद् गणसभा कहलाती थी। वह संविधान और नियमों का निर्माण करती थी। सभी गणनायक उसके द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार अपने-अपने राज्य का संचालन करते थे। वज्जी गणतन्त्र राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक—सभी क्षेत्रों में सम्पन्न और समृद्ध था। एकाधिनायकता में विश्वास करने वाले राजे इस शक्तिशाली गणतन्त्र को सहन नहीं करते थे। वे बार-बार आक्रमण कर उसे नष्ट करना चाहते थे, पर वज्जी गणतन्त्र की शक्तिशाली सेना उनके सपनों को सफल नहीं होने देती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२

गृहवास के तीस वर्ष

सिद्धार्थ और त्रिशला

चेटक के पिता का नाम केक और माता का नाम यशोमति था। उनकी पत्नी का नाम था पृथा[1]।

वज्जी गणतन्त्र में पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता थी। चेटक आर्हत धर्म के अनुयायी थे। वे भगवान् पार्श्व की शिक्षा का अनुसरण करते थे। कुछ गणनायक धर्म की धारणा में चेटक के साथ थे और कुछ गणनायक वैदिक धर्म के अनुयायी थे। उनके धार्मिक विश्वास का भेद गणतन्त्र की व्यवस्था में कहीं भी अवरोध पैदा नहीं करना था।

वैशाली के निकट कुंडपुर नाम का सन्निवेश था। उसके दक्षिण भाग में ब्राह्मणों की बस्ती थी, इसलिए वह ब्राह्मण कुंडपुर कहलाता था। उसके उत्तरी भाग में ज्ञात क्षत्रियों की बस्ती थी, इसलिए वह क्षत्रिय-कुंडपुर कहलाता था।

१. हरिषेणाचार्य कृत 'बृहत्कथाकोश' में चेटक की रानी का नाम सुभद्रा मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मण कुंडपुर के नायक का नाम था ऋषभदत्त ब्राह्मण। क्षत्रिय कुंडपुर के स्वामी थे क्षत्रिय सिद्धार्थ। विदेह देश में भगवान् पार्श्व का धर्म बहुत प्रभावशाली था। ऋषभदत्त और सिद्धार्थ—ये दोनों ही भगवान् पार्श्व के अनुयायी थे।

भारतवर्ष में श्रमण और वैदिक—इन दोनों धर्मों की स्वतन्त्र धाराएं थीं। उग्र, भोज, राजन्य, क्षत्रिय, ज्ञात, कौरव और द्राविड़—ये जातियां श्रमण धर्म की अनुयायी थीं। ब्राह्मण जाति वैदिक धर्म की अनुयायी थी। चिर-सहवास के बाद इन धाराओं में संगम होने लगा। क्षत्रिय वैदिक-धर्म का भी और ब्राह्मण श्रमण-धर्म का भी पालन करने लगे।

जैन धर्म में चौबीस तीर्थंकर (धर्म-प्रवर्तक) हुए हैं, वे सभी क्षत्रिय थे। इस मान्यता में जातिवाद के अहं का प्रदर्शन नहीं है। इसमें इस सत्य की सूचना है कि श्रमण-धर्म क्षत्रिय-जाति का मुख्य धर्म रहा है।

धर्म यद्यपि वैयक्तिक है, फिर भी वह सामाजिक प्रवृत्ति को प्रभावित करता रहा है। विवाह-सम्बन्ध के लिए जैसे कुल, बल, रूप, वैभव आदि देखे जाते थे, वैसे धर्म भी देखा जाता था। कन्याएं विधर्मी को भी दी जाती थी, पर साधारणतया पिता अपनी कन्या का विवाह साधर्मिक के साथ ही करना पसन्द करता था। महाराज केक ने अपनी पुत्री त्रिशला का विवाह सिद्धार्थ के साथ किया। इस वैवाहिक योग से वैशाली और क्षत्रिय-कुंडपुर के सम्बन्ध प्रगाढ़ हो गए।

सूर्योदय की पतीक्षा

प्राकृत भाषा का शब्द है—समण। संस्कृत में उसके तीन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ होते हैं—

१. श्रमण—श्रम या पुरुषार्थ करनें वाला।
२. शमन—शम या शान्ति रखनें वाला।
३. समन—समानता का व्यवहार करनें वाला।

श्रमण-संस्कृति के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं—श्रम, शान्ति और समानता। वह सभ्यता के आदिकाल से इन्हीं के प्रचार-प्रसार और प्रयोगों में लगी हुई है। भगवान् ऋषभ इस संस्कृति के प्रथम प्रणेता थे। भगवान् पार्श्व का इस धारा में तेईसवां स्थान है। वे वाराणसी के राजकुमार थे। ई० पू० ८७७ में उनका जन्म हुआ। ई० पू० ८४७ में वे दीक्षित हुए।

भगवान् पार्श्व नें अहिंसा को सामुदायिक साधना के आसन पर प्रस्थापित किया। उससे उसका मूल्य-परिवर्तन हो गया। पहले उसका वैयक्तिक मूल्य था। भगवान् पार्श्व के प्रयत्न से उसका सामाजिक मूल्य हो गया।

अहिंसा श्रमण का अर्वाचीन संस्करण है। इसमें श्रमण के तीनों अर्थ सन्निहित हैं। जो श्रमजीवी नहीं होता वह अहिंसक नहीं हो सकता। जो शान्तिजीवी नहीं होता वह अहिंसक नहीं हो सकता। जो साम्यजोवी नहीं होता वह अहिंसक नहीं हो सकता।

भगवान् पार्श्व नें अहिंसा के अभियान को बहुत गतिशील बनाया। उससे विदेह, सिन्धु-सौवीर, अंग, कुरु, पांचाल, काशी-कौशल आदि देशों की जनता विशेष प्रभावित हुई।

जेठ की गर्मी से संतप्त लोगों को वर्षा की बूंदें जैसे प्रिय लगती हैं, वैसे ही हिंसा से पीड़ित जनता को अहिंसा का स्वर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत मनोरम लगा। श्रमणों का अहिंसा का स्वर क्षीण हो रहा था। भगवान् पार्श्व ने उसे फिर शक्तिशाली बना दिया। अहिंसा के अभियान ने भगवान् को पार्श्व असाधारण लोकप्रिय बना दिया। वे श्रमण-परम्परा के सीमाबंधन से ऊपर उठकर सर्वव्यापी हो गए। ई० पू० ७७७ में उनका निर्वाण हो गया।

सूर्य आता है' तब सारा संसार प्रकाश से जगमगा उठता है। उसकी रश्मियां लौटती हैं तब सारा संसार तिमिर से भर जाता है। विश्व के रंगमंच पर यह अभिनय हर दिन होता है, फिर भी हमारे मन में एक तर्क है और वह बार-बार उभरता है। भगवान् पार्श्व ने अहिंसा को गतिमान बनाया पर उनके निर्वाण के बाद क्या हुआ? अहिंसा की गति मन्द हो गई। उनके अनुयायी शिथिल हो गए। हम इस सचाई को भूल जाते हैं कि विश्व का कण-कण सूर्य के प्रकाश को अपने में उतारता है और चमक उठता है। वे तब तक चमकते हैं, जब तक सूर्य होता है। उसके चले जाने पर वे बुझे हुए-से हो जाते हैं, क्योंकि वे स्वयं-प्रकाशी नहीं हैं। इस दुनिया में स्वयं-प्रकाशी बहुत कम होते हैं। अधिकांश लोग पर से प्रकाशित होते हैं। प्रकाशित करने वाला नहीं रहता, तब चारों ओर अंधकार छा जाता है।

सूर्य से प्रकाश लेनें वाले उसके चले जाने पर तिमिर में हों, यह कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य यह हो सकता है कि सूर्य से प्रकाश लेने वाले उसके चले जाने पर भी प्रकाशित रहें। भगवान् पार्श्व के निर्वाण को अभी दो सौ वर्ष ही नहीं हुए थे कि अहिंसा के अभियान की प्राणवत्ता ममाप्त हो गई। अकर्मण्यता, अशांति और विषमता की अमा इतनी गहरा गई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि जनता फिर सूर्योदय की प्रतीक्षा करने लगी।

सूर्योदय

वसंत अपने अस्तित्व का बोध करा रहा था। वनराजी नए पत्तों का नया परिधान पहने इठला रही थी। फूल परिमल बिखेर रहे थे। वासंती पवन उसे दूर-दूर तक संप्रेषित कर रहा था। उस सौरभमय वातावरण में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी का सूर्य उगा। उस दिन देवी त्रिशला ने एक पुत्र को जन्म दिया। अद्‌भुत था वह समय और अद्‌भुत था वह शिशु। माता प्रफुल्ल, पिता प्रफुल्ल, परिवार प्रफुल्ल और प्रकृति प्रफुल्ल। चारों ओर प्रफुल्लता ही प्रफुल्लता।

जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं है। वह नियति की प्रलम्ब शृंखला की एक कड़ी है। हमें लगता है कि जन्म लेने वाला अकेला आता है और यह सच भी है कि उसकी मुट्ठी में कुछ भी नहीं होता, पर उसके सूक्ष्म शरीर में और उसके मस्तिष्क में बहुत कुछ होता है।

यह आज का शिशु तीस वर्ष बाद होने वाला महावीर है। कोई भी व्यक्ति एक दिन में महावीर नहीं बन जाता। पराक्रम के बिन्दु संचित होते-होते सिन्धु का विराट् रूप लेते हैं। महावीर के पीछे भी पराक्रम के संचय की एक विशाल परम्परा है

पुराने जमाने की बात है। पोतनपुर में प्रजापति नाम का राजा था। उसके दो पुत्र थे—अचल और त्रिपृष्ठ। एक दिन पोतनपुर की राजसभा में नृत्य का आयोजन था। राजा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजकुमार और सभासद् सभी बड़ी तन्मयता से उसे निहार रहे थे। नर्तक के कौशल पर सब मुग्ध थे। उस समय एक आदमी आया। सबके स्वर्गीय आनन्द को भंग करता हुआ सीधा राजा के पास पहुंचा। राजा ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और नृत्य के कार्यक्रम को स्थगित कर उसका सन्देश सुनने लगा।

राजकुमार त्रिपृष्ठ को यह बहुत बुरा लगा। उसने अपने सचिव से दूत का परिचय पूछा। सचिव ने कहा—'यह प्रति-वासुदेव अश्वग्रीव का दूत है।' 'दूत का इतना सम्मान कैसे?' राजकुमार ने जानना चाहा। 'यह हमारे स्वामी का दूत है'—सचिव ने उत्तर में कहा। राजकुमार मौन हो गया।

दूत राजा को अश्वग्रीव का सन्देश देकर जाने लगा तब कुमार ने कहा—'दूत! इस बार मैं तुझे क्षमा करता हूं। आगे कभी भी आयोजन के बीच आकर रंग में भंग मत करना।' कुमार की कड़ी फटकार से दूत सहम गया। उसकी ओजस्वी वाणी ने उसे बोलने का अवसर नहीं दिया। वह मन ही मन जल उठा। उसने अश्वग्रीव के पास जाकर अपने कार्य का विवरण दिया और साथ-साथ अपने तिरस्कार की कहानी भी सुना दी। अश्वग्रीव दूत की बात सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उसने दूसरा दूत भेज प्रजापति को चावल के खेतों की सुरक्षा का आदेश दिया। दूत द्वारा वह आदेश सुन प्रजापति असमंजस में पड़ गया। उसने त्रिपृष्ठ से कहा—'यह दूत के तिरस्कार का फल है। अभी हमारी बारी नहीं है। अश्वग्रीव ने यह दूत के अपमान का बदला लिया है।' त्रिपृष्ठ ने कहा—'पिता जी!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आप चिन्ता मत कीजिए। मैं सब कुछ ठीक कर दूंगा। आप मुझे आदेश दें, मैं खेतों की सुरक्षा के लिए जाऊं।' पिता का आदेश प्राप्त कर दोनों भाई कुछ सैनिकों को साथ लेकर चले। अश्वग्रीव के कृषिमंडल में पहुंचकर उसके अधिकारी से मिले। उससे सुरक्षा के बारे में बातचीत की। उसने बताया —'इस पर्वतीय प्रदेश में एक दुर्दान्त सिंह है।' 'उसका हम क्या करेंगे?। राजकुमार ने पूछा। अधिकारी ने कहा—'आपका काम है किसानों को उससे बचाना।' कुमार ने सोचा "बहुत लम्बा काम है, हम कब तक यहां बैठे रहेंगे?" उसने अधिकारी से विदा ली। वह सिंह की खोज में निकल गया। स्थानीय लोगों की सहायता से उसकी गुफा का पता लगा लिया। सैनिकों ने हुल्ला किया। सिंह गुफा से बाहर निकल आया। सिंह पैदल चलता है, तब मैं रथ पर कैसे चढ़ा रहूं? वह निःशस्त्र है, तब मैं कैसे शस्त्र रखूं? यह सोच कुमार रथ से उतर गया और पास में कोई शस्त्र भी नहीं रखा। सिंह कुमार पर झपटा। कुमार ने उसके जबड़ों को पकड़ जीर्ण वस्त्र की भांति उसे चीर डाला। कुमार का पराक्रम देख सब लोग चकित रह गए। कुमार ने अधिकारी को बुलाकर कहा —'मैंने सिंह को मार डाला है। अश्वग्रीव को सूचना दे दो कि वह अब निश्चिन्त रहे। हम लोग अपनी राजधानी को जा रहे हैं।'

वही राजकुमार त्रिपृष्ठ आज कुछ जन्मों के बाद महाराज सिद्धार्थ के घर जन्म ले रहा है। अब उसके पराक्रम की दिशा बदल चुकी है। जो पराक्रम राजसी वृत्तियों की सिद्धि के लिए स्फूर्त हो रहा था, वह अब आध्यात्मिक सिद्धि के लिए स्फूर्त हो रहा है। यह दिशा-परिवर्तन आकस्मिक नहीं हुआ है. अनेक जन्मों की साधना इस जन्म में फलित हो रही है। हमें फूल को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखना है क्योंकि वह वर्तमान की सचाई है, पर मूल को विस्मृत कर फूल को नहीं देखना है, क्योंकि कारण को समझे बिना कार्य की व्याख्या नहीं की जा सकती।

स्वप्न-दर्शन

देवी त्रिशला एक पुत्र को पहले जन्म दे चुकी। उसका नाम है नंदिवर्धन[1]। यह उसका दूसरा पुत्र है। इस समय उसे जितना आनन्द हुआ, उतना पहले कभी नहीं हुआ। शिशु जब गर्भ में आया, तब देवी ने पिछली रात के समय महत्त्वपूर्ण स्वप्न देखे।[2]

---

१. दो परम्पराएं हैं। एक में नन्दिवर्धन का उल्लेख है और एक में उसका उल्लेख नहीं है।

२. स्वप्न-दर्शन की दो परम्पराएं—

चौदह स्वप्न-दर्शन	सोलह स्वप्न-दर्शन
१. हाथी	१. गज
२. वृषभ	२. वृषभ
३. सिंह	३. सिंह
४. लक्ष्मी	४. लक्ष्मी
५. पुष्पमाला	५. माल्यद्विक
६. चांद	६. शशि
७. सूर्य	७. सूर्य
८. ध्वजा	८. कुंभद्विक
९. कलश	९. मीन युगल
१०. पद्म-सरोवर	१०. सागर
११. क्षीर-सागर	११. सरोवर
१२. विमान	१२. सिंहासन
१३. रत्नपुंज	१३. देव-विमान
१४. अग्निपुंज	१४. नाग-विमान
	१५. रत्नराशि
	१६. निर्धूम अग्नि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय वह अर्द्धजागृत दशा में थी। स्वप्न-दर्शन के बाद वह जाग गई। उसने महाराज सिद्धार्थ को जगाकर कहा—'आज की वेला मेरे जीवन में अपूर्व है। अभी-अभी मैंने स्वप्न में हाथी देखा, वृषभ देखा, और भी बहुत कुछ देखा। मेरा मन प्रसन्न हो रहा है। चारों ओर प्रकाश और आनन्द की रश्मियां विकीर्ण हो रही हैं। क्या होगा, महाराज! मैं नहीं जानती, पर कोई विलक्षण घटना घटित होगी, यह आभास मुझे हो रहा है।'

महाराज सिद्धार्थ ने कहा—'देवि! तुमने बहुत शुभ स्वप्न देखे हैं। तुम कल्याणी हो। मुझे लगता है कि अपने कुल का बहुत बड़ा कल्याण होगा।' महाराज ने शुभ फल की सूचना देकर देवी के उल्लास को शतगुणित कर दिया। वह अपने शयनकक्ष में चली गई। शुभ स्वप्न देखने के बाद सोना नहीं चाहिए। देवी को यह बात ज्ञात थी। इसलिए उसने शेष रात जागृति में ही बिताई।

सूर्य की रश्मियां भूमि के सुदूर अंचलों तक फैल गईं। सब लोग अपने-अपने काम में लग गए। महाराज सिद्धार्थ सभा-मंडप में विराजमान हो गए। देवी त्रिशला भी वहीं बैठ गई। महाराज ने कर्मसचिव को बुलाकर कहा—'अष्टांगनिमित्त जानने वाले स्वप्न-पाठकों को आमंत्रित करो।' कर्मसचिव ने महाराज की आज्ञा शिरोधार्य की और उन्हें आमंत्रित किया। वे तत्काल राजकोय सभामंडप में पहुंचे। महाराज ने सम्मान-पूर्वक उन्हें बिठाया और देवी के स्वप्नों की बात कही।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वप्न-पाठकों के दल ने उन पर विचार किया। फिर दल के नेता ने कहा—देवी ने महत्त्वपूर्ण स्वप्न देखे हैं। यह असाधारण घटना है। देवी पुत्ररत्न को जन्म देगी। वह चक्रवर्ती होगा।'

'मेरा पुत्र चक्रवर्ती होगा'—इस कल्पना से ही देवी का मुख कमल की भांति रक्ताभ हो गया। महाराज के मुख पर हर्ष की स्वर्णिम रेखाएं खिच गईं। संभावना का वेग घटना के वेग से अधिक शक्तिशाली होता है—इस सचाई को उस समय दम्पत्ति के मुखमंडल पर सहजता से पढ़ा जा सकता था।

महाराज सिद्धार्थ ने वैशाली के गणतन्त्र की ओर दृष्टि डाली, फिर चक्रवर्ती के साम्राज्य पर। साम्राज्य बहुत विशाल और बहुत वैभवशाली होता है पर गणतन्त्र की सुषमा उसमें नहीं होती। सिद्धार्थ गणतन्त्र के बड़े समर्थक थे, वे उसका विकास चाहते थे। वे साम्राज्य नहीं चाहते थे, भले उसका वैभव बड़ा हो पर उसमें आदमी बड़ा नहीं होता। गणतन्त्र आदमी को बड़ा बनाने का प्रयत्न है। वह आदमी की स्वतन्त्रता को बनाए रखने का प्रयत्न है। जिन मूल्यों की स्थापना के लिए गणतन्त्र को विकसित किया गया, क्या उन्हीं मूल्यों का विघटन मेरे पुत्र के हाथों होगा? महाराज सिद्धार्थ एक अज्ञात उलझन के भंवर में फंस गए।

स्वप्न-पाठक स्वप्नों की सूक्ष्मताओं पर मनन कर फलादेश बता रहे थे। स्वप्न-पाठकों के प्रवक्ता ने कहा—'महाराज! आप क्षमा करें। हमने बताया था कि आपका पुत्र चक्रवर्ती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा। पर सूक्ष्मता में जाने के बाद उसमें हम कुछ संशोधन करना चाहते हैं।' 'तो क्या मेरा पुत्र चक्रवर्ती नहीं होगा?' महाराज ने बड़ी अधीरता से पूछा। स्वप्न-पाठक ने कहा— 'चक्रवर्ती होगा, पर वैशाली के गणतन्त्र की प्रणाली को समाप्त करने वाला चक्रवर्ती नहीं होगा। वह धर्म-चक्रवर्ती होगा। वह गणतन्त्र के आदर्शों और मूल्यों को विकसित करेगा। वह होगा अहिंसा, स्वतन्त्रता, सापेक्षता, सहअस्तित्व और अपरिग्रह के सिद्धान्तों का यशस्वी प्रवक्ता और महान् सूत्रकार।'

महाराज सिद्धार्थ उलझन के भंवर से एक साथ निकल गए। उन्होंने सुख की सांस ली। उन्होंने मन ही मन स्वप्न-पाठकों को धन्यवाद दिया। त्रिशला की प्रसन्नता भी महाराज के साथ थी। दोनों का राजसी हर्ष सात्विक हर्ष में बदल गया। राजसी हर्ष में मन एक-जैसा नहीं रहता। उसमें प्रसाद और विषाद का चक्र चलता रहता है। सात्विक हर्ष में केवल प्रसाद होता है। उसकी परिणति विषाद में नहीं होती।

महाराज ने स्वप्न-पाठकों को बहुमूल्य उपहार देकर विदा किया और स्वयं अपनी दिनचर्या में लग गए।

प्रतिज्ञा

इस दुनिया में कुछ बातें ऐसी होती हैं जिन पर हम सहसा विश्वास नहीं करते। हम उन्हीं बातों पर विश्वास करते हैं जिनसे परिचित हैं, जिन्हें अपनी आंखों से देखते हैं। हम जानते हैं कि मनुष्य जन्म लेने के बाद बढ़ता है। वह जैसे-जैसे बढ़ता है वैसे-वैसे उसका ज्ञान बढ़ता है। जन्मते बच्चे का ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकसित नहीं होता। इन्द्रियतन्त्र और मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ उसका ज्ञान विकसित होता है।

त्रिशला का पुत्र गर्भ में भी प्रत्यक्षज्ञानी (अवधिज्ञानी) था—यह बात हमें चौंका देने वाली है। गर्भ में परोक्ष-ज्ञान (इन्द्रिय-ज्ञान) भी विकसित नहीं होता तब प्रत्यक्ष-ज्ञान (अतीन्द्रिय-ज्ञान) कैसे विकसित हो सकता है? असाधारण घटना सन्देह और तर्क का लम्बा जाल बिछा देती है।

नवजात पिछले जन्म में नन्दन नाम का तपस्वी था। उसनें अपनें जीवन में बहुत तपस्याएं कीं। वह मास तक ध्यान में लीन रहता और मास के बाद एक दिन स्वल्प आहार लेता। फिर मासिक ध्यान-योग प्रारम्भ हो जाता। यह ध्यान और तप की साधना वर्षों तक चली। मुनि नन्दन के जीवन में समाधि और सेवा का मणि-कांचन योग था। उसने सूक्ष्म द्वारा स्थूल पर विजय प्राप्त की। चैतन्य के आवरण को क्षीण किया और प्रत्यक्ष ज्ञान की स्थायी योग्यता प्राप्त कर ली।

शिशु त्रिशला के गर्भ में था। एक दिन उसनें सोचा—मैं हिलता-डुलता हूं, उससे माता को कष्ट होता है। मुझे किसी को कष्ट क्यों देना चाहिए? अहिंसा की धारा उसके कण-कण में प्रवाहित थी। करुणा का संचार उसमें चिरकाल से संचित था। वह जागृत हुआ और उसने हिलना-डुलना बन्द कर दिया। वह ध्यानलीन योगी की भांति स्थिर, निस्पन्द और निष्प्रकम्प हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता त्रिशला को अनुभव हुआ कि गर्भ स्पंदित नहीं हो रहा है। उसके मन में सन्देह की एक हल्की-सी लहर उठी। थोड़े समय तक वह कल्पना में डूबती-तैरती रही। फिर भी गर्भ के स्पन्दन का कोई आभास नहीं मिला। त्रिशला उदास हो गई। उसकी सहेलियों ने उदासी का कारण पूछा। त्रिशला ने अपने मन की बात उन्हें बता दी। वह बात आगे बढ़ती-बढ़ती महाराज सिद्धार्थ के पास पहुंची। महाराज को वज्रपात जैसा आघात लगा। राजा और रानी की चिन्ता ने समूचे राजकुल को चिन्तातुर बना दिया।

नृत्य हो रहा था, गीत गाए जा रहे थे, बाजे बज रहे थे। आमोद-प्रमोद मुखर हो रहा था। किन्तु इस घटना से सब मौन हो गए।

गर्भस्थ शिशु ने बाहर की ओर ध्यान दिया। उसने देखा वातावरण पूर्ण नीरव है। सबके चेहरों पर उदासी है। शिशु ने सोचा—यह क्यों? कुछ देर पहले रागरंग हो रहा था, अचानक यह विराग क्यों? उसने ध्यान दिया और कारण स्पष्ट हो गया। उसने सोचा, यह स्थूल जगत् बड़ा विचित्र है। जो कार्य हित के लिए किया जाता है वह अहित के लिए मान लिया जाता है। मैंने माता की हितचिन्ता से हिलना-डुलना बन्द किया। मेरा वह कार्य सबके लिए कष्टकर बन गया। 'स्थूल जगत् के साथ-स्थूल व्यवहार ही अच्छा है।' यह सोच शिशु ने हिलना-डुलना शुरू कर दिया। त्रिशला को जैसे ही गर्भ के स्पन्दन का अनुभव हुआ वैसे ही उसका मुंह दमक उठा। उदासी प्रसन्नता में बदल गई। इस परिवर्तन की सूचना महाराज तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहुंचाई गई। सारा वातावरण हर्षोत्फुल्ल हो गया। मंगल-ध्वनियाँ पुनः मुखर हो गईं।

शिशु ने माता-पिता की मनोदशा, उनके भावी मनोरथों पर विचार किया। उनके प्रेम और वात्सल्य को ध्यान में रखकर शिशु ने यह प्रतिज्ञा की—माता-माता के जीवित-काल में मैं उन्हीं के साथ रहूंगा। उनका स्वर्गवास होने पर दीक्षित होऊंगा।

अद्भुत शिशु

आज देवी त्रिशला का मन सबसे अधिक उल्लसित है। शिशु के जन्म पर सबको उल्लास है। पर जितना उल्लास त्रिशला को है उतना दूसरों को कैसे हो सकता है? देवी ने गर्भकाल में महत्त्वपूर्ण स्वप्न देखे थे। स्वप्न-पाठक ने बताया था—देवी का पुत्र धर्म-चक्रवर्ती होगा। ये सब स्मृतियां उसे उल्लसित कर रही थीं।

देवी ने गर्भ की सुरक्षा और श्रेष्ठता के लिए अद्भुत संयम की साधना की थी। उसकी सफलता पर हर्ष होना स्वाभाविक है। देवी ने गर्भकाल में भोजन का संयम किया। वह अति शीत, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अति कटुक, अति कसैले, अति खट्टे, अति चिकने, अति रूखे, अति आर्द्र और अति शुष्क पदार्थ नहीं खाती थी। वह सब ऋतुओं के अनुकूल संतुलित भोजन करती थी।

देवी गर्भकाल में शोक, चिन्ता, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष आदि मानसिक आवेगों से बचकर प्रसन्नमना रहती थी। उसका सारा वातावरण प्रसन्नता से ओत-प्रोत था। सुगंधित चूर्ण और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्पमाला द्वारा उसका आवास सुवासित रहता था। वह धीमे-धीमे चलती, धीमे-धीमे बोलती, अट्टाहास्य नहीं करती, खुले आकाश में नहीं बैठती और त्वरा से कोई कार्य नहीं करती।

शिशु का सबसे अच्छा निर्माण गर्भ में होता है। माता पर उसके निर्माण का बहुत बड़ा दायित्व है। जो माता इस तथ्य को जानती है वह अपने पुत्र को सुन्दर, प्रबुद्ध और महावीर बना सकती है। इसे नहीं जानने वाली माता अपने पुत्र को कुरूप, अज्ञानी और महाकायर बना सकती है। त्रिशला ने अपने दायित्व का उचित निर्वाह किया। फलतः उसने एक सर्वांग सुन्दर और सर्वलक्षणसंपन्न शिशु को जन्म दिया।

वह शिशु इस लौकिक सृष्टि में आया। फिर भी आलौकिकता ने उसका साथ नहीं छोड़ा। उसका रूप अद्‌भुत था। रूप की विशेषता कुछ दूसरे लोगों में भी मिलती है। उस शिशु में एक अद्‌भुत बात और थी—उसके श्वासोच्छ्‌वास से एक सुगंध फूट रही थी। उस कमल जैसी सुरभि से आसपास का वातावरण सुहैंभित हो उठता था। श्वासोच्छ्‌वास में सुगन्ध होना असाधारण बात थी। वह शिशु के धर्म-चक्रवर्ती होने की सूचना थी। पसीना आना और मैल जमना शरीर की सामान्य प्रकृति है। किन्तु उस शिशु के शरीर में न पसीना आता था और न मैल जमता था। शरीर के विकारों को निकलने के लिए पसीना आना जरूरी है। स्वास्थ्य का नियम है कि रोमकूप खुले रहें और उनमें से पसीना विजातीय तत्त्वों को लेकर बाहर निकलता रहे। शिशु अत्यन्त पवित्र था। उसके विकार बहुत क्षीण हो चुके थे। उसका शरीर रोगमुक्त था। आंतरिक पवित्रता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर के स्वल्पमात्र विकारों को रूपान्तरित कर देती थी। न विकार संचित थे और न उन्हें निकालने के लिए पसीना आना जरूरी था।

शिशु का रक्त और मांस गोक्षीर-धारा की भांति धवल था। शरीर-शास्त्र के अनुसार रक्त में श्वेत और लाल दोनों प्रकार के कण होते हैं। एक प्रकार के कणों की वृद्धि होने पर मनुष्य स्वस्थ नहीं रहता और अत्यन्त वृद्धि होने पर जी नहीं सकता। उस शिशु के भी रक्तकण दोनों प्रकार के रहे होंगे और उसके रक्तमांस की आभा गोदुग्ध की भांति श्वेत रही होगी।

उस अद्‌भुत शिशु को देखने के लिए हज़ारों-हज़ारों लोग आते और उसकी सुरभि से अलौकिक आनन्द का अनुभव करते।

वह शिशु जब जन्मा तब वेला भी अद्‌भुत थी। सब दिशाए शांत और निर्मल। पवन का मंद-मंद प्रवाह। वसन्त ऋतु। सारी वनराजि विकस्वर हो रही थी। पेड़-पौधे नई कोपलों और नए पत्तों से लद रहे थे।

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग। मध्यरात्रि का समय। विजयसूचक शकुन। ग्रहों की उच्च स्थिति। प्रकृति ने अपनी पूर्ण सुषमा के साथ शिशु का स्वागत किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

शिशु की जन्मकुंडली—

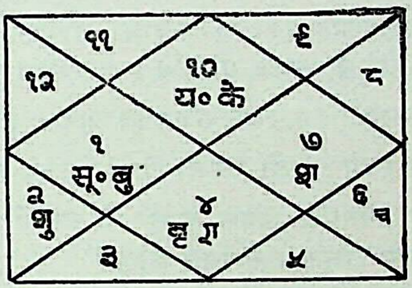

जन्म-कल्याण

सूर्य की रश्मियों ने भूमि के हृदय का स्पर्श किया। अन्धकार का आवरण पलक में उठ गया। सब सबके लिए प्रत्यक्ष हो गए। अस्पष्टता का साम्राज्य समाप्त। स्पष्टता का दिशा के हर अंचल पर अधिकार। उस पुण्य घड़ी में प्रियंवदा दासी आई। महाराज सिद्धार्थ को प्रणाम कर उसने पुत्र-जन्म की सूचना दी। प्रियंवदा की बात सुनकर महाराज पुलकित हो उठे। उनके आनन्द-सिधु में आकस्मिक ज्वार आ गया। उन्होंने प्रियंवदा को अमूल्य उपहार दिए। उसे सदा के लिए दासीकर्म से मुक्त कर दिया। शिशु के अन्तस्तल में छिपी हुई भावना की पहली प्रतिमा प्रतिष्ठित हो गई।

महाराज सिद्धार्थ ने महामात्य को बुलाकर कहा—'तुम उत्सव के अधिकारी को राजकुमार के जन्म-कल्याण के आयोजन का आदेश दो।' महाराज के मन में आज नई उमंगें उमड़ रही थीं। नई-नई कल्पनाएं उनके मन पर तैरने लगीं। उन्होंने कहा—'महामात्य ! नगर की सज्जा राजकुमार के जन्मोत्सव

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समय होती है, आज भी होगी। बंदी हर उत्सव पर मुक्त किए जाते हैं, आज भी किए जाएंगे। नगर की सफाई, सुगंधित जल का छिड़काव, ललित कलाओं का प्रदर्शन—ये सब हर उत्सव में होते हैं, आज भी होंगे। पर आज कुछ नया करना है। महामात्य! क्या यह संभव हो सकता है कि आज खाद्य वस्तुएं एकदम सस्ती कर दी जाएं? जो लोग गरीब हैं वे मूल्य दिए बिना आवश्यक वस्तुएं ले सकें? दुकानदारों को उसका मूल्य राजकोष से मिल जाए?'

महामात्य ने कहा—'महाराज! आपकी इच्छा हो तो यह सब संभव है।' महामात्य मितव्ययी था। पर आज उसकी प्रकृति ने भी करवट ले ली। वह पूर्ण उदार हो गया। महाराज से इन सबकी स्वीकृति प्राप्त कर उसने नगर में सब घोषणाएं करवा दीं। जनता ने उन्हें आश्चर्य के साथ सुना। वह प्रसन्न हुई राजकुमार के जन्म का संवाद पाकर और बहुत प्रसन्न हुई उसके जन्मोत्सव मनाने के प्रकार की सूचना सुनकर। वह समूचा दिन उत्सवमय रहा। यह जन्म-उत्सव क्या था वास्तव में गरीबों के कल्याण का उत्सव था। यह उत्सव दस दिन तक चला। जन-जन निहाल हो गया।[1]

वर्द्धमान

नाम और रूप इस जगत् के मुख्य तत्त्व हैं। शिशु रूप लेकर

१. कल्पसूत्र, ९६-१००; टिप्पनक पृ० १२, १३। (मुनिश्री पुण्यविजयजी द्वारा संपादित)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्मा था। नाम उसके साथ अभी जुड़ा नहीं था। महाराज सिद्धार्थ ने स्वजन वर्ग को आमन्त्रित कर उसका सम्मान किया। भोज के बाद सब एकत्र हुए। स्वजन वर्ग ने राजकुमार के नामकरण का प्रस्ताव किया। उस समय नामकरण माता-पिता ही किया करते थे। इस परम्परा के अनुसार महाराज सिद्धार्थ ने कहा—यह कुमार त्रिशला देवी के गर्भ में आया तब से हमारे कुल में हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य आदि की अकल्पित वृद्धि हुई है। संपदा के साथ-साथ पारिवारिक सौहार्द में भी वृद्धि हुई है। समूचे जनपद में कल्याण की वृद्धि हुई है। इन सबको ध्यान में रखकर मैं कुमार का नाम वर्द्धमान रखना चाहता हूं।'

त्रिशला ने महाराज के प्रस्ताव का समर्थन किया। कुमार का वर्द्धमान नाम घोषित हो गया।

कुमार के निमित्त से कुल का वैभव बढ़ रहा था और समय के निमित्त से कुमार स्वयं बढ़ रहा था। साधारण शिशु जैसे-जैसे बढ़ता है वैसे-वैसे उसके संस्कार निर्मित होते हैं और वर्द्धमान जैसे-जैसे बढ़ रहा था वैसे-वैसे उसके संस्कार शांत हो रहे थे। कुमार न कभी रोता था और न कभी हंसता था। वह सदा सहज प्रसन्न रहता। उसके मुख पर अद्‌भुत आभा थिरकती रहती। उसमें बाल-सुलभ स्फूर्ति थी, पर चपलता नहीं थी। कभी-कभी उसकी गम्भीर मुद्रा देख परिचारिकाएं चिंतित हो उठतीं। उसे चेतना का धरातल प्राप्त था। वहां पहुंचकर वह जीवन के तल से अतीत-सा प्रतीत होता। बाहर से देखने वालों के लिए वह बहुत बड़ी समस्या बन जाती। पर वर्द्धमान स्वयं में समस्याओं से अतीत था। अवस्था से शिशु, पर वृत्तियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनासक्त। न खाने में रस, न पीने में रस, और न बालसुलभ क्रीड़ा में रस। उसका आन्तरिक रस इतना प्रबल था कि दूसरों को रस रूप में प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियाँ उसे रसहीन लगती थीं। यह विलक्षणता भावी जीवन का दिशा-संकेत कर रही थी।[1]

अभय और पराक्रम

जीवन की सफलता के दो विशाल स्तम्भ हैं—ज्ञान और शक्ति। शक्तिहीन ज्ञान दयनीय और ज्ञानहीन शक्ति भयंकर होती है। दोनों का योग होने पर दोनों समर्थ और अभय बन जाते हैं। वर्द्धमान जितने ज्ञानी थे उतने ही शक्तिशाली। भय उनका स्पर्श भी नहीं कर पा रहा था। एक बार कुछ बच्चे आए। उन्होंने वर्द्धमान से 'आमलकी क्रीड़ा'[2] नाम का खेल खेलने को कहा। वर्द्धमान उनकी बात मान गृह-उद्यान में गए। क्रीड़ा प्रारम्भ हुई। पीपल के पेड़ को लक्ष्य कर बच्चे दौड़ने लगे। वर्द्धमान सबसे आगे दौड़कर उस पेड़ पर चढ़ गए। वे वापस उतर रहे थे, इतने में देखा कि एक भयंकर सांप उसके तने से लिपटा हुआ है। उसकी फुफकार सुन बच्चे भाग खड़े हुए।

१. आयारचूला १५।१५, १६।

२. यह खेल किसी एक वृक्ष को लक्ष्य कर खेला जाता है। इसे खेलने वाले लक्षित वृक्ष की ओर दौड़ते हैं। जो लड़का सबसे पहले उस पेड़ पर चढ़कर उतर जाता है वह हारे हुए लड़कों के कंधे पर बैठकर दौड़ प्रारम्भ करने के स्थान तक जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्द्धमान भयभीत नहीं हुए। उन्होंने सांप को पकड़ नीचे फेंक दिया। स्वयं नीचे उतर गए। बच्चों ने हर्षध्वनि की। वर्द्धमान विजयी हो गए।

वर्द्धमान ने अभी आठ वर्ष पूरे नहीं किए थे। फिर भी उन के अभय और पराक्रम की गाथा हर क्षेत्र में गाई जाने लगी। वे क्षत्रिय कुल में जन्मे थे, इसलिए उनका क्षात्रतेज प्रकट हो रहा था। वे साधना का प्रखर बल लेकर जन्मे थे, इसलिए उनका आत्मतेज प्रकट हो रहा था। उनकी तेजस्विता सबको प्रभावित कर रही थी।

ज्ञान भी पराक्रम का एक अंग है। पराक्रम-शून्य व्यक्ति ज्ञान अर्जित नहीं कर सकता और अज्ञानी व्यक्ति पराक्रम का उचित उपयोग नहीं कर सकता। दोनों की सार्थकता दोनों के समन्वय में है। वर्द्धमान पराक्रमी और ज्ञानी दोनों थे। परिवार वाले उनके पराक्रम से परिचित हो गए। उनके ज्ञान से पूरे परिचित नहीं हुए। एक परम्परा के अनुसार वर्द्धमान पढ़ने के लिए विद्यालय नहीं गए। दूसरी परम्परा के अनुसार वर्द्धमान आठ वर्ष के हुए तब माता-पिता ने उन्हें पढ़ने के लिए विद्यालय भेजा।

वर्द्धमान बहुत विनम्र थे। वे माता-पिता की आज्ञा को बड़ी तत्परता से शिरोधार्य करते थे। उनका अतीन्द्रिय ज्ञान विकसित था। विद्यालय में जो पढ़ाया जाता, वह उन्हें ज्ञात था। फिर भी आदेश-पालन की दृष्टि से वे विद्यालय में गए। उपाध्याय ने राजकुमार का स्वागत किया। छात्र पढ़ रहे थे। वर्द्धमान उनके साथ बैठ गए। कहा जाता है कि ब्राह्मण के वेश में इन्द्र आया। उसने वर्द्धमान के पास जाकर अक्षर और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पर्याय के विषय में अनेक प्रश्न पूछे। कुमार ने उनका उत्तर दिया। उत्तर इतना विशद था कि उससे व्याकरण के गंभीर रहस्य उद्घाटित हो गए। ब्राह्मण ने उपाध्याय से कहा —घी स्वयं स्निग्ध है। उसे स्निग्ध करना आवश्यक नहीं होता। कुमार स्वयं प्रबुद्ध है। प्रबुद्ध को बोध देना क्या आवश्यक है ?

उपाध्याय कुमार की प्रतिभा से हतप्रभ हो गया। उसने कुमार के पास जाकर अपने मन के सन्देह रखे। कुमार ने उनका समाधना दिया। उपाध्याय ने कुमार को सादर विदा किया और महाराज सिद्धार्थ के पास सन्देश भेजा—'कुमार विद्या के पारगामी हैं, इन्हें पढ़ने के लिए आप विद्यालय न भेजें।' कुमार की शिक्षा सम्पन्न हो गई। अब परिवार के लोग उनकी ज्ञानराशि से भी कुछ-कुछ परिचित होने लगे। अन्तर् जगत् की पहचान सचमुच कठिन होती है।

विरक्ति और विवाह

समय की सुई निरन्तर घूमती रहती है। वह कभी नहीं रुकती। महावीर ने जन्म लिया। किशोर हुए। तरुण बने। अब वे यौवन की देहलीज पर पहुंच गए। उनका शरीर पूर्ण विकसित हो गया। स्वास्थ्य, सौन्दर्य और शक्ति—तीनों में कोई कम या अधिक नहीं लग रहा था।

एक दिन महाराज सिद्धार्थ त्रिशला से बातचीत कर रहे थे। उस समय एक दूत आया। उसने कलिंग नरेश जितशत्रु का सन्देश उन्हें दिया। जितशत्रु ने अपनी पुत्री यशोदा से कुमार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्द्धमान के विवाह का प्रस्ताव किया था। उन्हें इस आकस्मिक प्रस्ताव पर आश्चर्य हुआ। वे आज इसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। पता नहीं जितशत्रु ने उनकी भावना को कैसे जान लिया।

माता-पिता जानते थे कि कुमार विषयों से विरक्त हैं। उनका मन आत्मलीन है। उनकी चेतना भीतरी जगत् में ही सक्रिय है। फिर भी राजकुल की परम्परा को चलाना है। कुमार का विवाह करना होगा। उन्होंने वह विवाह का प्रस्ताव स्वीकार कर दूत को विसर्जित कर दिया।

महाराज सिद्धार्थ ने कुमार वर्द्धमान को बुलाकर विवाह का प्रस्ताव उनके सामने रखा। कुमार बड़े असमंजस में पड़ गए। उनका अन्तःकरण ब्रह्म में लीन हो रहा था। वे एकत्व की साधना कर रहे थे। समुदाय में रहते हुए अकेले में रहने का अभ्यास कर रहे थे। विवाह में एक से दो होना होता है। चेतना को बाहर की वस्तु के साथ जोड़ना होता है। वे ऐसा नहीं चाहते थे।[1]

---

१. (क) किन्तु माता-पिता की इच्छा का अतिक्रमण करना भी उन्हें इष्ट नहीं था। इसलिए वे हां या ना—दोनों नहीं कह पाए। माता-पिता ने उनके मौन का लाभ उठाकर विवाह की तैयारियां शुरू कर दीं। कुछ दिनों बाद राजकुमारी यशोदा के साथ कुमार वर्द्धमान का विवाह सम्पन्न हो गया—यह श्वेताम्बर परम्परा का अभिमत है।

(ख) महावीर ने विवाह का प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया। उनके द्वारा ऐसा किए जाने पर यशोदा और उसके पिता जितारि या जितशत्रु (कलिंग देश के राजा) को बड़ा आघात पहुंचा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जल में कमल

कुमार वर्द्धमान राजप्रासाद में रहते थे। समृद्धि और ऐश्वर्य। परिवार और परिकर। सब प्रकार की सुविधाएं, पर उनका मन इन सबसे ऊपर-ऊपर चल रहा था। उनकी दृष्टि भीतर की गहराइयों में जा रही थी। उनकी सारी चेष्टाएं और सारी इन्द्रियां एक ही दिशा में गतिशील थीं। वह दिशा थी आत्मा। चेतना जब सुप्त होती है तब बाहरी वस्तुएं रसभरी प्रतीत होती हैं और वे इन्द्रियों को अपनी ओर खींचती हैं। चेतना जब जागृत हो जाती है तब बाहरी वस्तुएं जैसी हैं, वैसी ही लगती हैं, फिर वे इन्द्रियों को अपने जाल में फंसा नहीं पातीं।

कुमार की चेतना जागृति के मध्यबिन्दु पर पहुंच चुकी थी। वे जल में कमल की भांति निर्लिप्त जीवन जी रहे थे। उनका अपना राज्य था, अपना वैभव था और अपना परिवार था। वे अपने लक्ष्य की परिधि में चल रहे थे। दूसरों को बड़ा विस्मय हो रहा था।।

वे बहुत सादा भोजन करते। आसपास के लोग सोचते—कुमार ने राजकुल में जन्म लेकर क्या किया जो राजकुलोचित भोजन नहीं करते ?

वे अपने में खोए से रहते। आस-पास के लोग सोचते—कुमार ने राजकुल में जन्म लेकर क्या किया, जो विलासपूर्ण

और वे दोनों ही दीक्षित होकर तप करने चले गए। जितारि कलिंग देशस्थित (वर्तमान उड़ीसा) उदयगिरि पर्वत से मुक्ति को प्राप्त हुए और यशोदा 'कुमारी पर्वत' पर तपस्या कर स्वर्ग को गईं—यह दिगम्बर परम्परा का अभिमत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन नहीं होते।

वे सबके प्रति करुणा और समानता का व्यवहार करते। आसपास के लोग सोचते—कुमार ने राजकुल में जन्म लेकर क्या किया, जो जनता पर अनुशासन नहीं करते।

साधारण लोग सोचते हैं कि इस दुनिया में जन्म लेने वाला हर मनुष्य प्रवाह के पीछे-पीछे चले। अधिकांश लोग ऐसे ही सोचते हैं पर कुछ लोग प्रवाह के साथ नहीं चलते। वे स्वतन्त्र दिशा में चलते हैं। वह दिशा दूसरों के लिए प्रश्नचिह्न बन जाती है। कुमार सारे राजकुल में प्रश्नचिह्न बनकर जी रहे थे। माता-पिता उन्हें अपने प्रवाह का अनुगामी बनाना चाहते थे। नंदिवर्द्धन ने भी उन्हें प्रवाहपाती बनाने की चेष्टा की। समूचा परिवार भी यही चाहता था कि कुमार उनके चरण-चिह्नों पर चले। पर स्वतन्त्र चेतना की लौ जलने पर नई दिशा उद्घाटित हो जाती है, फिर प्रवाह के साथ चलना सम्भव नहीं रहता।

महाभिनिष्क्रमण

समयचक्र अबाधगति से चलता है। वह सब अवस्थाओं के परिवर्तन में सहयोग देता रहता है। उसका योग पाकर बालक युवा और युवा वृद्ध हो जाता है और वृद्ध मौत की शरण में चला जाता है। कुमार वर्द्धमान यौवन की रेखा पर घूमते-घूमते २८ वर्ष के हो गए। उनके माता-पिता बुढापे की रेखा पर पहुंच गए और एक दिन इस लोक से प्रयाण कर गए। उनकी मृत्यु से सारा परिवार शोकाकुल हो गया। कुमार वर्द्धमान को माता-पिता से अत्यधिक प्रेम था। पर उनका मन शोकातुर नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ। वे चेतना के जिस स्तर पर जी रहे थे, उसमें शोक जैसा कुछ बचा ही नहीं था। वे कोरे तत्त्ववेत्ता नहीं थे। वे तत्त्वदर्शी थे। वे जीवन और मृत्यु को एक साथ देख रहे थे। नश्वरता के सिद्धान्त से उनका गाढा परिचय हो चुका था। नश्वर जीवन का समाप्त होना उनके लिए कोई अद्भुत नहीं था। जो बहुत स्वाभाविक है उसके लिए तत्त्वदर्शी शोक कैसे करेगा ?

कुमार माता-पिता के स्नेह-बन्धन से मुक्त हो गए। माता-पिता की उपस्थिति में उनके पास रहने का संकल्प भी पूरा हो गया। उनकी श्रमण होने की भावना जागृत हुई। उन्होंने अपने बड़े भाई नंदिवर्द्धन के पास हृदय की भावना को प्रकट किया। नंदिवर्द्धन उसे सुन चौंक उठे। उनका हृदय कांप उठा, आँखों से अश्रुधारा फूट पड़ी। वे सिसकते स्वर में बोले—'कुमार ! माता-पिता के वियोग की व्यथा से हम मुक्त नहीं हुए हैं और तुम फिर हमें व्यथित करना चाहते हो ! क्या यह दीक्षा का उपयुक्त समय है ? मैं मानता हूं कि माता-पिता की मृत्यु से तुम्हारे मन को चोट लगी है। तुम्हारा अनासक्त मन अब इस जागतिक वातावरण से दूर होना चाहता है। मृत्यु ऐसी ही घटना है। वह आसक्त लोगों के मन में भी अनासक्ति का बीज बो देती है। जो पहले से ही अनासक्त हो उसकी अनासक्ति के बीज को अंकुरित कर देती है। मुझे लगता है तुम्हारा अनासक्ति-बीज अंकुरित हो गया है। पर तुम सोचो, अभी मैं तुम्हें गृहत्याग की अनुमति कैसे दे सकता हूं ? मैं दोहरी व्यथा का भार ढोने में समर्थ नहीं हूं।'

कुमार वर्द्धमान का हृदय प्रेम से लबालब भरा था। उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करुणा अनन्त थी। किसी को कष्ट देना उनके लिए सम्भव नहीं था। इस प्रकृति ने उनके चरणों को घर को सीमा से बाहर नहीं जाने दिया। वे दो वर्ष और घर में रहे। किन्तु यह स्थिति गृहवासी और गृहत्यागी दोनों से भिन्न थी। कुमार ने इन दो वर्षों में आत्मा का प्रवर सान्निध्य पा लिया। वे निरन्तर काय-विसंजन की स्थिति में रहने लगे। समत्व की धारणा अत्यन्त स्पष्ट हो गई। उन्होंने सजीव जल में जीवों का स्पंदन देखा और उसका उपयोग बन्द कर दिया। इन्द्रिय संयम सध गया। वाणी का संयम और ध्यान—दोनों विकसित हो गए। इस स्थिति में उन्हें गृहवासी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि वे गृह में रह रहे थे। उनकी वेशभूषा गृहवासी जैसी थी। वे परिवार के बीच रहते थे। संपत्ति के वैधानिक अधिकार से मुक्त नहीं हुए थे। इस स्थिति में उन्हें गृहत्यागी भी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि वे आत्मा की सन्निधि में रह रहे थे।

एक वर्ष पूरा गया। अब वर्तमान जीवन और भावी जीवन के मध्य केवल एक वर्ष का अंतराल था। कुमार गृहवास में थे, पर उनकी आन्तरिक चेतना में गृहमुक्तवास का स्वप्न आकार ले रहा था। वे राजकुल के वैभव के बीच थे, पर उनका अन्तःकरण वैभव-मुक्ति की दिशा में गतिशील हो रहा था। धन कहीं एक स्थान पर केन्द्रित हो, यह उन्हें इष्ट नहीं था। प्रतिदिन प्रातःकाल वे उसे बांटने लगे। हजारों-हजारों व्यक्ति उससे लाभान्वित हुए। कुमार ने जो अपना था, उसका वितरण किया, जो प्राप्त होता था, उसका वितरण किया। यह वितरण का क्रम पूरे वर्ष तक चला। दान की भूमिका सम्पन्न हो गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपरिग्रह की भूमिका का क्षण प्रस्तुत हो गया।

दो वर्ष पूरे हो गए। नंदिवर्द्धन के अनुरोध की अवधि पूर्ण हो गई। अब कुमार के महाभिनिष्क्रमण का मार्ग निर्बाध हो गया। कुमार ने नंदिवर्द्धन और चाचा सुपार्श्व के सामने फिर श्रमणदीक्षा का प्रस्ताव किया। उन दोनों ने स्वीकृति दे दी। अब महाभिनिष्क्रमण का अवरोध समाप्त हो गया।

हेमंत ऋतु, मृगसिर कृष्णा दशमी, दिन का तीसरा प्रहर, विजय मुहूर्त्त—उस वेला में कुमार ने घर से अभिनिष्क्रमण किया।

कुमार ने दो दिन का उपवास किया। उनकी उपवास-साधना बहुत अद्‌भुत थी। वे आत्मा को शरीर से भिन्न देखते थे। शरीर और चेतना को अभिन्न मानने वाला शरीर को सर्वोपरि मूल्य देता है किन्तु शरीर आत्मा को भिन्न मानने वाला सर्वोपरि मूल्य देता है आत्मा को। वह शरीर के लिए नहीं जीता। वह जीता है शरीर के भीतर विराजमान आत्मा को मुक्त करने के लिए। आत्मा को मुक्त करने के लिए शरीर का विसर्जन बहुत आवश्यक है। उपवास उसी शरीर-विसर्जन की साधना का एक अंग है। उपवास करने वाला शरीर के बंधन से मुक्त होकर आत्मा की सन्निधि में चला जाता है। कुमार वर्द्धमान ने आत्मा की सन्निधि प्राप्त कर घर का त्याग किया। जिसे आत्मा की सन्निधि प्राप्त नहीं होती वह घर को कैसे त्यागेगा?

परिवार के लोग महोत्सव मना रहे थे। युवतियां मंगल-गीत गा रही थीं। मांगलिक बाजे बज रहे थे। मंगल-पाठक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंगल-मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। वृद्ध महिलाएं आशीषें दे रही थीं। बाहर से तुमुल कोलाहल हो रहा था। कुमार आत्मा के अंचल में अकेले बैठे थे—शान्त, मौन और कोलाहल से सर्वथा दूर।

कुमार शिविका में बैठ 'ज्ञातषण्ड' वन में पहुंचे। नंदिवर्द्धन और सुपार्श्व उनके साथ थे। हजारों-हजारों की भीड़ उनके पीछे-पीछे चल रही थी। कुमार शिविका से उतरकर अशोक वृक्ष के नीचे गए। वहां उन्होंने गृहस्थ का वेश उतारा, निर्ग्रन्थ का रूप स्वीकार किया। समूची परिषद् शान्त होकर एकटक कुमार की ओर निहार रही थी। गीत-वाद्य बन्द हो गए। दिशा का हर अंचल नीरव और शान्त हो गया। सिर का लुंचन करने के पश्चात् कुमार ईशानकोण की ओर मुंह कर खड़े हो गए। उनकी आकृति पर प्रसन्नता फूट रही थी। उनके ललाट पर आलौकिक आनन्द की रेखाएं खिच रही थीं। समूचा वातावरण आनन्द और उल्लास से भर गया। कुमार की दोनों अंजलियाँ सम्पुट हो गईं। 'णमो सिद्धाणं' कह उन्होंने सिद्ध आत्मा को नमस्कार किया। मोक्ष के प्रति पूर्ण समर्पित होते ही उनके अहंकार और ममकार विलीन हो गए। उनके अन्तःकरण में इस समता-संकल्प की प्रतिष्ठा हो गई—'मेरे लिए सर्व पाप-कर्म (राग-द्वेष) अकरणीय हैं।' विषमता का मूल राग-द्वेष है। वही पापकर्म है। उसका विसर्जन करने वाला ही सही अर्थ में निर्ग्रन्थ बनता है—ग्रन्थियों से मुक्ति पाता है। क्षत्रियकुंडपुर की जनता के देखते-देखते कुमार वर्द्धमान अब श्रमण वर्द्धमान हो गए। अब राज्य से उनका सम्बन्ध छूट गया। वे ऐसे राज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से जुड़ गए, जहां शासन और शासित का भद नहीं है। उनका घर से सम्बन्ध टूट गया। वे ऐसे घर में प्रवेश पा गए, जहां कभी कष्ट नहीं होता। उनका परिवार से सम्बन्ध विच्छिन्न हो गया। वे इतने बड़े परिवार में विलीन हो गए जहां 'स्व' और पर' की रेखा नहीं है। श्रमण वर्द्धमान के चरण क्षत्रिय-कुंडपुर की सीमा से आगे बढ़े। हजारों-हजारों लोगों की की आंखों में आंसुओं की धारा बह चली। लोग पीछे-पीछे चलने लगे। 'कुमार अब हमारे नहीं रहे। अब ये हमें छोड़कर जा रहे हैं। न जाने फिर कब आयेंगे ?' इस प्रकार की असंख्य आवाजें वातावरण में गूंज उठीं। लोग विह्वल-से हो गए। यह दुनिया का बहुत बड़ा आश्चर्य है कि व्यक्ति एक सीमा में रहता है तब उस सीमा के लोग उसे अपना मानते हैं। जब वह छोटी सीमा को छोड़ व्यापक बनता है तब सीमा में रहने वाले उसे पराया अनुभव करने लग जाते हैं। श्रमण वर्द्धमान क्षत्रिय-कुंडपुर के नागरिकों को अब पराए-से लगने लगे। अपनत्व का सूत्र टूटता-सा नजर आया। श्रमण वर्द्धमान कु रुके। उन्होंने कहा—'मैं अब श्रमण हूं—राज्य और राष्ट्र की सीमा से मुक्त। आप लोग सीमा में रहने वाले हैं। आप मेरे साथ कब तक चलेंगे ?' युवा श्रमण की वाणी सुनते ही जनता के आगे बढ़ते चरण वहीं रुक गए। वह प्रतिमा-सी निश्चल होकर खड़ी रह गई। श्रमण वर्द्धमान ने उनसे विदा ली। वे अकेले चल पड़े। व्यक्ति की अंतिम निष्पत्ति अकेलापन ही है, यह सत्य जैसे मूर्त हो रहा था। देश और काल ने श्रमण वर्द्धमान और जनता के बीच में व्यवधान डाल दिया। दूरी ने उन्हें आँखों से ओझल कर दिया। आँखों ने जब उन्हें देखने में असमर्थता प्रकट की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब जनता अपने-अपने घर को लौट गई। राजकुमार वर्द्धमान की कहानी संपन्न हो गई। इधर नंदिवर्द्धन क्षत्रियकुंडपुर का शासन-सूत्र चला रहे हैं, उधर श्रमण वर्द्धमान आत्मजगत् के शासन-सूत्र का संचालन कर रहे हैं। नंदिवर्द्धन का काम स्थूल और सरल है। श्रमण वर्द्धमान का काम सूक्ष्म और जटिल। पर उनका उल्लास जटिल को सरल बनाने की दिशा में गतिशील हो रहा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३

साधना-काल

तपोभूमि

वर्द्धमान ने श्रमण होते ही अपने घर की सारी सुरक्षा की दीवारें हटा दीं। उसको सबके लिए मुक्त कर दिया। अब कोई भी आ सकता है। किसी के लिए प्रवेश निषिद्ध नहीं है। सबका स्वागत, फिर कोई किसी रूप में आए। उनकी तपस्या इस अभिग्रह से प्रारम्भ हुई—'मैं अपने आपको कैवल्य के लिए समर्पित करता हूं। उसकी साधना के लिए इस देह का विसर्जन करता हूं। मैं देवी, मानवीय और तैरश्चिक—किसी भी उपसर्ग को सहन करूंगा, किन्तु साधना मार्ग से विचलित नहीं होऊंगा।'

श्रमण वर्द्धमान की साधना संकल्प से शुरू हुई। इस संकल्प ने उनके पराक्रम को प्रस्फुटित कर दिया। पराक्रम किसमें नहीं होता? हर मनुष्य में उसके बीज छिपे रहते हैं। जो संकल्प की कुंजी घुमाता है उसके पराक्रम का द्वार खुल जाता है और जो संकल्प की कुंजी को घुमाना नहीं जानता उसका पराक्रम सोया हुआ रह जाता है। श्रमण वर्द्धमान संकल्प की शक्ति से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिचित थे। उन्होंने उसका उपयोग किया। उनका पराक्रम जाग उठा। जिसका पराक्रम सोया हुआ रहता है वह आदमी भयभीत होता है। और भयभीत मनुष्य ही अपनी सुरक्षा के लिए सीमा बांधकर रहता है। कोई भी भीरु मनुष्य सीमा-मुक्त नहीं हो सकता। श्रमण वर्द्धमान अभय हो गए। उनकी पुरानी सीमाएं टूट गईं। समूचा जगत् उनके अभय की प्रयोग-भूमि बन गया।

भय होता है शरीर को। श्रमण वर्द्धमान ने शरीर की ममता का विसर्जन कर दिया। वे अभय हो गए।

भय होता है परिग्रह को। उन्होंने परिग्रह का विसर्जन कर दिया। वे अभय हो गए।

भय होता है शत्रु से। उन्होंने समूचे जगत् के प्रति मैत्री की भावना की। उनका अन्तःकरण निर्मल हो गया। वे अभय हो गए।

वे अनन्त की यात्रा पर चल पड़े। उन्हें इस बात का भय नहीं रहा कि कल क्या होगा? न रोटी-पानी की चिन्ता, न स्थान की और न सर्दी-गर्मी की। जो शरीर का विसर्जन कर देता है वह इन सब चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। वे वस्त्र का उपयोग करना छोड़ चुके थे। भूख-प्यास पर इतनी विजय पा ली थी कि महीनों तक रोटी-पानी न मिले तो भी उनकी साधना में किसी प्रकार के विघ्न की सम्भावना नहीं रही। स्थान की चिन्ता इसलिए नहीं थी कि जंगल का हर पेड़ उनका स्थान था। सूने घरों और देवालयों में ठहरने से उन्हें कौन रोकता? कठिनाई उन्हें होती है जो केवल कपड़े ही पहनते हैं, घरों में ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते हैं और रोटी-पानी के द्वारा ही जीवन चलाते हैं। श्रमण वर्द्धमान ने धारणा के वस्त्र पहन लिये, अपनी चेतना के कोष्ठ में रहना प्रारम्भ कर दिया और सूक्ष्मलोक से शक्ति प्राप्त करने लगे, इसलिए उन्हें कोई कठिनाई नहीं रही। वे क्षत्रिय-कुंडपुरी से प्रस्थान कर सांझ के समय कर्मारग्राम पहुंचे। ग्राम के बाहरी भाग में ध्यान कर खड़े हो गए। यह प्रथम दिन उनकी कसौटी का दिन बन गया।

एक ग्वाला खेत से आया। साथ में बैल थे। उसे गांव में जाना था। उसने श्रमण को खड़े देखा। वह बैलों को वहां छोड़ गांव में चला गया। बैल चरते-चरते दूर चले गए। श्रमण भी बाहरी जगत् से बहुत दूर चले गए। गाएं दुहकर ग्वाला वापस आया। अंधकार फैल रहा था। आंखें देखने में असमर्थ हो रही थीं। वह श्रमण के पास पहुंचा। उसने इधर-उधर घूमकर देखा पर बैल नहीं मिले। उसने श्रमण के पास आकर पूछा—'मेरे बैल कहां गए ?' श्रमण ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर बैलों को ढूंढने चला गया। वह काफी रात जाने तक ढूंढता रहा। पर बैल नहीं मिले। वह थककर सो गया। सुबह उठकर फिर बैलों की खोज में चल पड़ा। वह उन्हें खोजते-खोजते फिर गांव के पास आ पहुंचा। उसने देखा, श्रमण के आस-पास बैल खड़े हैं। उसने सोचा—'श्रमण की नीति अच्छी नहीं है। यह बैलों को चुराना चाहता है। शाम को इन्हें छिपा दिया और जब मैं चला गया तब फिर अपने पास ले आया।' कुछ संयोग ऐसे होते हैं जो अकारण ही संदेह पैदा कर देते हैं। श्रमण के पास बैलों की उपस्थिति ने ग्वाले को संदिग्ध बना दिया। इस दुनिया में न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाने कितने आकस्मिक संयोग मिलते हैं और न जाने कितने व्यक्ति उस ग्वाले की भांति संदेह की कारा में बंदी बन जाते हैं। ग्वाले ने सोचा—यह श्रमण बैलों को अपने साथ ले जाना चाहता है। शाम को इसी ने बैल छिपा दिये थे। अब यह इन्हें लेकर चले जाने की सोच रहा है। इस कल्पना ने उसे भूत बना दिया। वह रस्सी से श्रमण को मारने के लिए दौड़ा। संयोग ऐसा बना कि इधर ग्वाला रस्सी को आकाश में उछालता हुआ आया और उधर नंदिवर्द्धन आ पहुंचा। कुछ लोग कहते हैं—इन्द्र आ पहुंचा। नंदिवर्द्धन आया हो या इन्द्र आया हो—कोई आया, यह वास्तविकता है। नंदिवर्द्धन ने उस ग्वाले को रोका और उसे समझाकर भेज दिया। फिर वे बोले—'भगवन्! कल तक आप राजकुमार की स्थिति में थे। ग्वाला तो क्या कोई सैनिक भी आपके सामने आंख उठाकर नहीं देख सकता था। आज आप एक अकिंचन की स्थिति में हैं। आपके पास कोई सुरक्षा का साधन नहीं है। यह बहुत ही दयनीय दशा है। इसे मैं कैसे सह सकता हूं? आप मुझे आदेश दें। मैं आपकी सुरक्षा की व्यवस्था करूं।'

श्रमण वर्द्धमान के होंठों पर स्मित फूट पड़ा। वे बोले—'सुरक्षा की व्यवस्था किसलिए? मैंने समता का मार्ग चुना है, मैंने अहिंसा का पथ अंगीकार किया है, फिर सुरक्षा कौन करेगा? किसकी करेगा? मैं अब शरीर में नहीं हूं। मैं अपने आप में स्थित हो गया हूं। जब मैं शरीर में था तब मुझ तक पहुंचते थे—जीवन की इच्छा और मौत का भय, सुख की आकांक्षा और दुःख का भय, प्रशंसा की कामना और निंदा का भय, पाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की लालसा और खो जाने का भय। अब मुझमें जीवन की इच्छा नहीं है। और जब जीवन की इच्छा नहीं है तो मौत का भय कैसे होगा ? मौत से वही डरता है जिसमें जीवन की इच्छा होती है। मैंने जीवन और मृत्यु को साक्षात् देख लिया है। उनके प्रति मेरा आकर्षण समाप्त हो चुका है।

'जिसमें जीवन की इच्छा नहीं है उसमें सुख की आकांक्षा भी नहीं होती। सुख की आकांक्षा जीवन की इच्छा का ही एक बिन्दु है। आदमी जीना चाहता है। जीने का सुख प्राप्त हो तब दूसरा सुख चाहता है। मुझमें जीवन की इच्छा नहीं है इसलिए सुख की आकांक्षा भी नहीं है। जिसमें सुख की आकांक्षा नहीं है उसे दुःख का भय नहीं हो सकता। जो जीवन-मृत्यु और सुख-दुःख के प्रति सम हो चुका है, वह अपने सुरक्षा-केन्द्र में पहुंच चुका है। वह अरक्षित नहीं है, फिर उसकी सुरक्षा किसलिए ?

'जीवन जितना स्वाभाविक है, मौत भी उतनी ही स्वाभाविक है। जो स्वाभाविक है, उससे भय क्यों होना चाहिए ? सुरक्षा जीवन के लिए नहीं, वह भय के लिए होती है। सुरक्षा वही कर सकता है जो अभय हो। जिसमें जीवन की एषणा है और मौत का भय है, क्या वह दूसरों की सुरक्षा करेगा ?'

श्रमण वर्द्धमान की अभयवाणी सुन नन्दिवर्द्धन अवाक् रह गया। उसने कुछ कहने का प्रयत्न किया पर कुछ कह नहीं सका। दो क्षण रुककर उसने साहस बटोरा। अपनी भावना पर चातुर्य का पुट देते हुए बोला—'भंते ! आप महावीर हैं। मैं आपकी सुरक्षा क्या कर सकता हूं ? आप चाहें तो कुछ सहायता करना चाहता हूं।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण ने कहा—'यह नहीं हो सकता। अर्हत् दूसरों की सहायता की अपेक्षा नहीं करते। अतीत में ऐसा घटित नहीं हुआ, आज नहीं हो सकता और भविष्य में भी नहीं होगा कि अर्हत् दूसरों की सहायता से कैवल्य प्राप्त करें। वे अपने ही पराक्रम से, अपने ही पुरुषार्थ से, अपनी ही अर्हता से कैवल्य प्राप्त करते हैं और अपने ही पराक्रम से परमपद—मोक्ष को प्राप्त करते हैं।'

इस घोषणा ने श्रमण वर्द्धमान को भगवान् महावीर बना दिया। नन्दिवर्द्धन ने कहा—'भंते! आप महावीर हैं। आपका संकल्प, आपकी सहिष्णुता, आपकी धृति और आपकी आत्मोपलब्धि महान् है। आप महावीर हैं। हमारे जैसे लोग इतने अभय और इतने पराक्रम की बात नहीं सोच सकते। हम व्यवहार के स्तर पर जीने वाले लोग इतने निरपेक्ष नहीं हो सकते।' नन्दिवर्द्धन ने भगवान् की यथार्थ वन्दना की। उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं थी। लौकिक मनुष्य व्यवहार के स्तर पर बहुत अपेक्षाएं रखते हैं, इसलिए वे सत्य के प्रति निरपेक्ष होकर चलते हैं। आध्यात्मिक मनुष्य अपनी अपेक्षाओं को सत्य के साथ जोड़ देते हैं, इसलिए व्यवहार के प्रति निरपेक्ष होकर चलते हैं। नन्दिनवर्द्धन का चिन्तन इस धरातल पर था कि महावीर मेरे भाई हैं, राजकुमार हैं, ऐश्वर्य में पले-पुसे हैं, राजभवन की सुख-सुविधाओं में रहे हैं। अब वे अकेले घूमेंगे, अकिंचन जीवन जीयेंगे, कहां मिलेगी स्थान और भोजन की सुविधा? बहुत लम्बी है कष्टों की कहानी। लोग कहेंगे—नन्दिवर्द्धन ने अपने भाई के लिए कुछ नहीं किया। इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीर की चिन्ता है पर उससे भी अधिक चिन्ता इस बात की है कि दूसरे लोग क्या कहेंगे ? महावीर के दर्शन का धरातल सर्वथा दूसरा है। वे सोचते नहीं हैं, वे देखते हैं। सोचना स्थिति सापेक्ष होता है। दर्शन यथार्थ का होता है। महावीर ने देखा– व्यक्ति बाहर में अपेक्षा सूत्रों से जुड़ा है और भीतर में वह मुक्त है। महावीर ने देखा, मुक्ति उनके भीतर है। सत्य उनके भीतर है। व्यक्ति जब बाहरी अस्तित्व को स्वीकार करता है तब भीतर के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। वह जब भीतरी अस्तित्व को स्वीकार करता है तब बाहर के दरवाजे बन्द हो जाते हैं। उनके बाहर के दरवाजे बन्द हो गए। इसलिए उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी—न शरीर की, न जीने की और न मरने की। वे निश्चिन्त होकर परिव्रजन करने लगे।

बहुत सारे साधक साधनाकाल में परिव्रजन को छोड़ एक स्थान में रहते हैं। महावीर साधनाकाल में घूमते रहे। यह विपरीत क्रम लगता है। पर महावीर का दर्शन था कि जिसका मन घूमता है वह एक स्थान में बैठने पर भी घुमक्कड़ होता है। जिसका मन स्थित होता है वह घूमते हुए भी एक स्थान में रहता है। अपरिग्रही एक स्थान में कैसे रह सकता है ? बन्धन से मुक्ति चाहने वाला किसी स्थान से अनुबन्ध कैसे कर सकता है ? महावीर अभी शरीर-मुक्त नहीं थे। शरीरधारी को कुछ न कुछ हलन-चलन करनी ही होती है। वे दिन-रात के अधिक भाग में स्थिर रहते थे। परिव्रजन में शरीर का स्पन्दन हो जाता था। वे अतिवादी नहीं थे। इसलिए केवल गति के पक्ष में भी नहीं थे और केवल स्थिति के पक्ष में भी नहीं थे। उन्होंने गति और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिति में समन्वय स्थापित किया।

सब जीव समान

भगवान् महावीर कनकखल आश्रमपद के भीतरी मार्ग से उत्तर वाचाला जा रहे थे। ग्वालों ने देखा। वे दौड़े-दौड़े महावीर के पास पहुंचे। उन्होंने कहा—"भंते ! यह मार्ग सीधा है पर खतरनाक है। थोड़ा आगे जाने पर चंडकौशिक सर्प का खतरा है। वह सर्प दृष्टिविष है। उसके दृष्टिपात मात्र से आदमी भस्म हो जाता है। भंते ! आप बाहरी मार्ग से जाइए। वह थोड़ा लम्बा जरूर है पर निरापद है। जान-बूझकर जीवन के साथ क्यों खेलना चाहिए ?' जिजीविषा रखने वालों के लिए उनका परामर्श बहुत काम का था। पर महावीर की जिजीविषा समाप्त हो चुकी थी। उनमें जीने की इच्छा शेष नहीं थी। जिसमें जीने की इच्छा नहीं होती, उसमें मरने की इच्छा भी नहीं होती। साधारणतया हम सोचते हैं कि आदमी जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता। पर गहरे में उतरने पर पता लगेगा कि जो जीना चाहता है वह मरना भी चाहता है। मरने की चाह मिटने पर जीने की चाह भी शेष नहीं रहती। जीने की चाह मरने की चाह से जुड़ी हुई है। वह उससे अलग नहीं हो सकती। महावीर जीवन और मृत्यु (जो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं) से ऊपर उठकर चल रहे थे। उनका ध्यान-केन्द्र आत्मा बन चुका था। वह जन्म और मृत्यु—दोनों से अतीत है। महावीर ने ग्वालों के परामर्श को स्वीकार नहीं किया। वे आगे की ओर चले। वे सब जीवों के साथ तादात्म्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापित कर रहे थे। यह एक महत्त्वपूर्ण अवसर था। इसे वे कैसे खो देते? वे वनखण्ड में पहुंचकर खड़ी मुद्रा में ध्यान करने लगे।

चंडकौशिक सर्प आश्रम में घूमकर वहां आया। उसने देखा, कोई आदमी खड़ा है। उसका क्रोध भभक उठा। अपने एकान्त का भंग उसे अच्छा नहीं लगा। उसके स्थान पर कोई दूसरा आ जाए यह कैसे सह्य हो सकता। उसका फन ऊपर उठा। उसने सूरज के सामने दृष्टि डाली और फिर वही क्रूर दृष्टि महावीर पर फेंकी। उनके शरीर के आभा-वर्तुल के आसपास विष की धारा बह चली। सारा वायुमंडल विषमय हो गया पर महावीर पर कोई आंच नहीं आई। वे विष के समुद्र में अमृत की भांति निश्चल खड़े रहे। उनकी अपलक दृष्टि से प्रेम की धारा बहने लगी। अमृत और विष का, प्रेम और रोष का द्वन्द्व-युद्ध शुरू हो गया।

चंडकौशिक को अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। उसका आज तक का अनुभव यही है कि उसकी जिस पर दृष्टि पड़ी वह वहीं ढेर हो गया। वर्तमान की घटना उसके लिए सर्वथा नई है। उसने पूरे रोष में आकर दृष्टि से विष उगला और जिस पर विष उगला वह वैसे ही खड़ा है इस घटना ने विषधर के रोष में उफान ला दिया। उसने फन को कसा और पूरी शक्ति से फिर दूसरी बार भगवान् पर दृष्टि फेंकी। विषधर का यह प्रयत्न भी विफल गया। विफलता ने विषधर को और अधिक उत्तेजित कर दिया। उसने तीसरी बार फिर दृष्टि से विष-तरंगें उछालीं।

तीसरा प्रयत्न भी व्यर्थ। विषधर आगे सरका। भगवान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहीं खड़े रहे। विषधर जितना उत्तेजित था, भगवान् उतने ही शान्त थे। विषधर विष-तरंगों को उछाल रहा था, भगवान् प्रेम की धार बहा रहे थे। प्रेम और क्रोध का अद्‌भुत संगम हो रहा था। विषधर ने भगवान् के पैर में डंक मारा। रक्त की धार बह चली। विषधर ने उसे चूसा। यह रक्त कहाँ ? यह तो दूध है। विषधर वितर्क में उलझ गया। दूसरी बार काटा, तीसरी बार काटा। फिर वही दूध जैसी धार। विषधर पैर से कंठ तक भगवान् के शरीर से लिपट गया, पर उन्हें हिला नहीं सका। विषधर का अभिमान चूर हो गया। अभिमान के बिना क्रोध कैसे रहता ? उसका क्रोध भी शान्त हो गया। विषधर बदलने लगा। उसके बन्ध शिथिल होने लगे। प्रेम ने द्वेष पर विजय पा ली। तब भगवान् ने अपना ध्यान पूरा किया। विषधर को प्रशान्त दृष्टि से देखा। वह विनीत शिष्य की भाँति पैरों के पास बैठ गया। भगवान् ने कहा—'चंडकौशिक ! शान्त हो जाओ। देखो, तुम क्रोध के कारण ही विषधर बने हो। तुम तपस्वी साधु थे। तुम्हारे पैर से मेंढकी मर गई। शिष्य ने उसका प्रायश्चित्त करने का अनुरोध किया। तुमने प्रायश्चित्त नहीं किया। शिष्य के बार-बार अनुरोध करने पर तुम क्रुद्ध होकर उसे मारने दौड़े। तुम खम्भे से टकरा गए। सिर फट गया। फिर तुम इसी कनकखल आश्रम में तपस्वियों के कुलपति हुए। तुम बहुत क्रोधी थे इसलिए तुम्हारा नाम चंडकौशिक रखा गया। एक बार श्वेतांबी के राजकुमार तुम्हारे आश्रम में घुसकर फल-फूल तोड़ने लगे। तुम्हें पता चला तब तुम कुल्हाड़ी लेकर राजकुमारों के पीछे दौड़े। तुम्हारा पैर फिसल गया। तुम गड्ढे में गिर गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारी ही कुल्हाड़ी ने तुम्हारे प्राण ले लिये। वहाँ से मरकर तुम दृष्टिविष सर्प बने। तुम क्रोध के फल बहुत भुगत चुके। विषधर ! इस क्रोध को केंचुली की भाँति उतार फेंको और सदा के लिए शान्त हो जाओ।'

चंडकौशिक को पूर्वजन्म की स्मृति हो गई। उसने सारी घटनाओं को चलचित्र के दृश्यों की भांति देखा। उसका हृदय बदल गया। उसमें 'सब जीव समान' की भावना का बीज अंकुरित हो गया।

भगवान् महावीर पन्द्रह दिन तक चंडकौशिक के स्थान में रहे। इन पन्द्रह दिनों में भगवान् उपवासी रहे—न अन्न लिया और न पानी। विषधर भी उनके पास बैठा रहा। उसने भी कुछ नहीं खाया-पीया। पन्द्रहवें दिन चैत्री अमावस्या को विषधर की मृत्यु हो गई। तब भगवान् भोजन के लिए उत्तर वाचाला में गए। भगवान् ने नागसेन के घर खीर का भोजन किया। भगवान् अपने लिए भोजन बनवाते नहीं थे। जो सहज बना हुआ मिलता, उसे स्वीकार करते। नागसेन भगवान् को भोजन देकर प्रसन्न हो रहा था। प्रकृति ने उनकी प्रसन्नता में चार चांद लगा दिए। उसका लड़का बारह वर्षों से गुम था। बहुत खोजने पर भी मिल नहीं रहा था। भगवान् के भोजन करते-करते वह घर पर आ गया। नागसेन की प्रसन्नता आकाश को छू गई।

भगवान् ने भोजन कर वहाँ से प्रस्थान कर दिया। उनकी साधना में उपवास के दिन अधिक हैं, भोजन के कम। उपवास-काल में वे एकान्त, शून्य या जंगल में चले जाते। भोजन के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए गांव में आ जाते। साधना-काल में यह क्रम चलता रहा।

भगवान् का साधना-काल बारह वर्ष छह मास और एक पक्ष का है। इस अवधि में उन्होंने अधिकांश समय ध्यान में बिताया। वे प्रायः मौन रहे। कुछ वर्षों तक अकेले रहे, कुछ वर्षों तक गोशालक उनके साथ रहा। उन्होंने सर्दी-गर्मी आदि की प्राकृतिक कठिनाइयाँ झेलीं। साथ-साथ तिर्यंच, मनुष्य और देवकृत उपसर्ग भी सहे। उनकी धृति की परीक्षा के अनेक क्षण आए। उन्होंने किसी भी परीक्षा में रस नहीं लिया। उनका रस आत्मा के इतने गहरे में उतर गया था कि आत्महीन परीक्षाएं उन तक पहुंच भी नहीं पाती थीं।

चन्दनबाला

साधना का बारहवां वर्ष चल रहा था। भगवान् कौशाम्बी में विहार कर रहे थे। अतीन्द्रिय ज्ञान उन्हें जन्मना प्राप्त था। श्रमण बनते ही उन्हें पर-चित्तज्ञान (मनःपर्यवज्ञान) उपलब्ध हो गया। अब वे कैवल्य की उपलब्धि के निकट चल रहे थे। उस समय उन्होंने एक प्रयोग की परिकल्पना की। इसका सम्बन्ध एक घटना-चक्र से जुड़ा था। भगवान् अपनी मौन साधना से जन-कल्याण कर रहे थे। वह साधना ही क्या, जिससे अपने कल्याण के साथ-साथ जन-कल्याण न हो। उन दिनों नारी और दास—दोनों की भारी अधोगति हो रही थी। धार्मिक धारणा के कारण नारी समानता के अधिकार से वंचित थी। वह हीन मानी जाती थी। कर्मवादी धारणा ने दास को नारकीय जीवन बिताने के लिए बाध्य कर रखा था। अभिजात वर्ग उस पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनचाहा अत्याचार कर सकता था—उसे पशु की भांति बेच सकता था, पीड़ित कर सकता था, अंगहीन कर सकता था और मृत्युदंड भी दे सकता था। इसमें न राज्य का कोई हस्तक्षेप था और न कोई धर्म-चेतना इसके विरोध में प्रबल आन्दोलन कर रही थी। नीति, धर्म और भाग्य के नाम पर हिंसा का तांडव शताब्दियों से चल रहा था।

पौष कृष्णा प्रतिपदा के दिन भगवान् ने संकल्प किया। वह संकल्प अन्यायपूर्ण परिस्थिति को बदलने का एक महत्त्वपूर्ण हेतु बना। भगवान् ने उसे प्रकट नहीं किया। क्या अव्यक्त की शक्ति व्यक्त से कम काम करती है ? उसने कौशाम्बी के जनमानस को इतना झकझोरा कि छह मास की अवधि में एक क्रान्ति घटित हो गई। भगवान् पौष कृष्णा प्रतिपदा को आहार लेने के लिए निकले। अनेक घरों में घुसे। लोगों ने अपने घरों में भगवान् के आने को कल्पवृक्ष का अवतरण माना। घरों में जो भोजन था, उसे लेने का अनुरोध किया। पर भगवान् ने उनका अनुरोध स्वीकार नहीं किया। वे बिना भोजन किए लौट गए। दूसरे दिन भगवान् कौशाम्बी के घरों में घूमे। फिर भोजन किए बिना लौट गए। लोग बड़े आश्चर्य में थे। वे भगवान् की भावना को समझ नहीं पा रहे थे। तपस्या के दिनों में वे एकान्त में ध्यान-लीन रहते थे, भोजन के लिए घरों में नहीं जाते थे। जब तपस्या नहीं होती तब घरों में जाते और भोजन करते थे। ये दोनों बातें जनता जानती थी। आजकल भगवान् घरों में आते हैं और भोजन नहीं करते, इसका रहस्य जनता नहीं जान सकी। इसलिए यह नगरी में चर्चा का विषय बन गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् एक दिन अमात्य गुगुप्त के घर गए। अमात्य की पत्नी का नाम था नन्दा। वह भगवान् के प्रति श्राद्ध रखती थी। उसने बड़ी श्रद्धा के साथ भोजन लेने का आग्रह किया। सब कुछ शुद्ध और उपयुक्त था। फिर भी भगवान् ने कुछ नहीं लिया। वे जैसे आए थे वैसे ही लौट गए। नन्दा का मन उदास हो गया। उसकी दासियों ने कहा—'आप उदास क्यों होती हैं ? क्या आपने नहीं सुना भगवान् चार मास से भोजन नहीं ले रहे हैं ? वे प्रतिदिन भोजन के लिए घर-घर में जाते हैं और भोजन लिये बिना ही लौट जाते हैं।' यह सुन नन्दा की आतुरता बढ़ गई।

अमात्य भोजन के लिए घर आया। उसने नन्दा को उदास देखा। उदासी का कारण पूछा। नन्दा ने भगवान् महावीर के घर आने और भोजन लिये बिना वापस चले जाने की बात बताई। अमात्य ने पूछा—'ऐसा क्यों हुआ ?'

नन्दा बोली—'क्या यह आज ही हुआ है ?'

'तो क्या सदा ही ऐसा होता है ?' अमात्य ने जिज्ञासा की।

नंदा ने व्यंग्य की भाषा में कहा—'आप कौशाम्बी के अमात्य हैं। सारे राज्य का संचालन करते हैं। सब घटनाओं की जानकारी रखते हैं, फिर आपको इसका ही पता नहीं है कि भगवान् चार मास से भोजन नहीं ले रहे हैं।'

नंदा की बात सुन अमात्य स्तब्ध रह गया। उसे अपने अज्ञान पर अनुताप हुआ। उसने गुप्तचरों को बुलाकर वस्तु-स्थिति की जानकारी करने का निर्देश दिया।

कौशाम्बी के राजा का नाम था शतानीक। मृगावती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी महारानी थी। वह महाराज चटक की पुत्री थी। उसकी एक प्रतिहारी थी विजया। वह किसी कार्यवश मंत्री के घर गई हुई थी। उसने नंदा के मुंह से सारी बात सुनी और महारानी तक पहुंचा दी। महारानी ने महाराज के सामने सारी स्थिति रखी। महाराज ने अमात्य को बुलाकर उस स्थिति की चर्चा की। इस प्रकार भगवान् की तपश्चर्या ने राजा और प्रजा सबके मन को आंदोलित कर दिया। वे चार मास का उपवास पहले कई बार कर चुके हैं। किन्तु यह अपने ढंग का निराला ही है। इससे जनमानस जितना आंदोलित हुआ उतना पहले किसी तप से नहीं हुआ।

राजा और अमात्य ने भगवान् की तपस्या-पूर्ति के अनेक प्रयत्न किए। पर उनका एक भी प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

भगवान् अपनी चर्या के अनुसार घर-घर में घूमते थे और वैसे ही खाली हाथ लौट आते थे। इस चर्या में पांच मास और पचीस दिन पूरे हो गए। छबीसवें दिन भगवान् धनावह श्रेष्ठी के घर पहुंचे। वहां एक कुमारी देहली के बीच खड़ी थी। उसके पैर में बेड़ी डाली हुई थी। सिर मुंडित था। तीन दिन की भूखी थी। उसके पास एक सूप था। उसके कोने में उबले हुए उड़द थे। वह राजपुत्री थी। वर्तमान में वह दासी का जीवन बिता रही थी।

कुमारी ने भगवान् को देखा। उसका चेहरा खिल उठा। दुःख की घटाएं विलीन हो गईं। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह मृदु स्वर में बोली—'भंते ! मेरे पास और कुछ नहीं है। ये उबले हुए उड़द हैं। आप अनुग्रह करें। मेरे हाथ से आहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लें।' भगवान् को आते देख कुमारी को लगा कि वे आहार लेनें की मुद्रा में हैं। किन्तु कुछ ही क्षणों में उसकी आशा निराशा में बदल गई। भगवान् आहार लिये बिना मुड़ गए। उसके चेहरे पर उदासी छा गई। आंखों से आंसू की धार वह चली। भगवान् ने जाते-जाते उसकी सिसकियाँ सुनीं। वे वापस मुड़े। कुमारी के हाथ से उबले हुए उड़द का आहार ले लिया।

भगवान् के आहार लेनें की बात विजली की भांति सारी नगरी में फैल गई। 'उन्होंने धनावह की प्रताड़ित दासी के हाथ से आहार लिया'—यह चर्चा का विषय बन गया। कौन है वह दासी ? स्थान-स्थान पर यह पूछा जाने लगा। महाराज शतानीक महारानी मृगावती ने भी उस दासी के भाग्य को सराहा। उसे देखने के लिए दोनों धनावह के घर पहुंचे। मृगावती नें चंदना को देख महाराज से कहा—'यह महाराज दधिवाहन की पुत्री है। यह यहां कैसे ? यह दासी कैसे ?' जैसे-जैसे बात आगे बढ़ी वैसे-वैसे लोग चंदना के मूल रूप से परिचित होते गए। लोग जैसे-जैसे चंदना के मूल रूप से परिचित होते गए वैसे-वैसे समाज-व्यवस्था को कोसने लगे। हाय ! जिस समाज-व्यवस्था में राजकुमारी भी बाजार में बिक सकती है, उसमें दूसरों की क्या गति होती होगी ? दास का जीवन कितना कष्टपूर्ण होता है, उसकी स्मृतिमात्र से शरीर रोमांचित हो जाता है। अतीत की राजकुमारी और आज की दासी पर इतना अत्याचार हो सकता है, उसे इतना प्रताड़ित किया जा सकता है तब दूसरी दासियों पर न जाने क्या बीतता होगा ? यह दास-प्रथा बहुत अन्याय है। यह मानवता के सिर पर कलंक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का टीका है। क्या इसे चलाना जरूरी है—इस चर्चा ने इतना उग्र रूप लिया कि समाज का स्थितिपालक वर्ग चिंतित हो उठा। भगवान् महावीर की तपस्या ने जनमानस को इतना प्रभावित किया कि दासप्रथा की जड़ें हिल गईं। पहला परिणाम चंदना पर आया। वह सदा के लिए दासी-जीवन से मुक्त हो गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४

कैवल्य और धर्मोपदेश

साधना की सिद्धि

कार्य और कारण में निकट का सम्बन्ध है। कोई भी कार्य कारण के बिना निष्पन्न नहीं होता। हम आम के पेड़ को देख रहे हैं। वह आमों से लदा हुआ है। ये आम कहां से आए ? इनका उपादान क्या है ? इनका निमित्त क्या है ? आम के बीज के बिना आम का पेड़ ही नहीं होता तब आम कहां से होंगे ? आम का पेड़ है पर ऋतु आदि की अनुकूलता नहीं है तो आम नहीं होंगे। चेतना की ज्योति न हो तो कोई भी व्यक्ति ज्योतिष्मान् नहीं हो सकता। चेतना की ज्योति हो और ध्यान एवं संयम की साधना न हो तो वह प्रकट नहीं होती।

भगवान् ध्यान और संयम की साधना से अपनी ज्योति को प्रकट कर रहे थे। इस साधना में बारह वर्ष बीत गए। तेरहवें वर्ष के छह मास पूरे हो गए। सातवां मास चल रहा था। वैशाख शुक्ला दशमी का दिन, चौथा प्रहर। विजय नामक मुहूर्त्त। उस समय भगवान् जंभियग्राम के बाहर ऋजुबालुका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नदी के उत्तरी तट पर विहार कर रहे थे। वहाँ श्यामाक नाम के कौटुम्बिक का एक खेत था। उसमें शालवृक्ष था। भगवान् उसके पास गोदोहिका आसन में बैठ सूर्य का आतप लेते हुए ध्यान कर रहे थे। दो दिन का निर्जल उपवास था। इस ध्यानमुद्रा में भगवान् को कैवल्य प्राप्त हुआ।

कैवल्य-प्राप्ति के साथ-साथ भगवान् की साधना सम्पन्न हो गई। वे पूर्णतः प्रत्यक्ष-ज्ञानी हो गए। अब उनकी चेतना पर कोई आवरण नहीं रहा। ज्ञेय और ज्ञाता के बीच कोई व्यवधान नहीं रहा। जैसे अपने अस्तित्व का साक्षात् हुआ वैसे ही वस्तु जगत् का साक्षात् हो गया। वे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गए। समूचे लोक के सब जीवों और अजीवों के सब पर्यायों को जानने-देखने की उनकी क्षमता प्रकट हो गई। अब उन्हें बोलने का अधिकार प्राप्त हो गया।

प्रथम प्रवचन

चतुरंग मार्ग

भगवान् ने कैवल्य प्राप्त कर पहला प्रवचन किया।[1] उसमें

१. प्रथम प्रवचन के विषय में दो परम्पराएं हैं। एक परम्परा के अनुसार भगवान् ने विपुलाचल पर प्रथम प्रवचन किया। उस समय महाराज श्रेणिक और महारानी चेलणा वहां उपस्थित थीं। दूसरी परम्परा के अनुसार भगवान् ने पहला प्रवचन केवलज्ञान प्राप्त होने की भूमि के स्थान पर ही किया। उस समय केवल देवगण ही उपस्थित थे, कोई मनुष्य उपस्थित नहीं था। इसलिए कोई व्रती या महाव्रती नहीं बना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् ने आत्म-साक्षात्कार के चतुरंग मार्ग का प्रतिपादन किया—

१. सम्यग् दर्शन—यथार्थ पर आस्था केन्द्रित करना।

२. सम्यग् ज्ञान—यथार्थ को जानना।

३. सम्यग् चारित्र—संयम करना।

४. सम्यग् तप—संचित कर्म-मल का शोधन करना।

इस जगत् में मूल तत्त्व दो हैं—आत्मा (जीव) और अनात्मा (अजीव)। आत्मा की शरीरबद्ध दशा का नाम जीव और उसकी शरीरमुक्त दशा का नाम परमात्मा है। आत्मा से परमात्मा होने का साधन धर्म है।

मुनि धर्म

समता धर्म है, विषमता अधर्म है। आन्तरिक क्षमता की दृष्टि से सब जीव समान हैं—न कोई छोटा है और न कोई बड़ा। विकास की दृष्टि से जीव छह प्रकार के होते हैं—

- पृथ्वीकायिक—खनिज पदार्थों के जीव।
- अप्कायिक—जल के जीव।
- तेजस्कायिक—अग्नि के जीव।
- वायुकायिक—हवा के जीव।
- वनस्पतिकायिक—हरियाली के जीव।
- त्रसकायिक—गतिशील जीव।

१. भगवान् ने अहिंसा के लिए प्रवचन किया। भगवान् ने कहा—

- किसी जीव को मत मारो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

- किसी को मत सताओ,
- किसी पर हुकूमत मत करो,
- किसी को परतन्त्र मत करो—दास मत बनाओ।

यह समता-धर्म है, यह अहिंसा धर्म है, यही शाश्वत धर्म है।

समता-धर्म की अनुपालना के लिए—

- न किसी से डरो और न किसी को डराओ।
- न किसी को हीन समझो और न अपने आपको हीन समझो।
- किसी से घृणा मत करो।
- इष्ट वस्तु के मिलने पर हर्ष और न मिलने पर शोक मत करो।
- सुख में हर्षित और दुःख में दीन मत बनो।
- जीवन में आसक्त और मौत से भयतीत मत बनो।
- प्रशंसा से मत फूलो और निन्दा से मत मुरझाओ।
- सम्मान पाकर गर्व और अपमान पाकर तुच्छता का अनुभव मत करो।

जीवन के सब द्वन्द्वों में सम रहो, तटस्थ रहो। समता में रहना ही अहिंसा है।

२. भगवान् ने सत्य के लिए प्रवचन किया। भगवान् ने कहा—'सत्य भगवान् है। वही लोक में सारतत्त्व है। उसकी खोज करो। जीवन के किसी भी व्यवहार में असत्य का प्रयोग मत करो।'

सत्य शाश्वत धर्म है। इसकी अनुपालना के लिए—

- काया से ऋजु रहो—झूठा संकेत मत करो।
- मन से ऋजु रहो—जो मन में हो वही भाव प्रदर्शित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करो। जो मन में न हो वह भाव प्रदर्शित मत करो।

- वाणी से ऋजु रहो—असत्य वचन मत बोलो।
- संवादी रहो—कथनी और करनी की समानता रखो।
- क्रोध मत करो।
- लोभ मत करो।
- भय मत करो।
- हास्य-कुतूहल मत करो।

असत्य के सब प्रसंगों से बचो। सत् (जो है उसी) का ध्यान करो। सत् का ध्यान ही सत्य है।

३. भगवान् ने अचौर्य के लिए प्रवचन किया। भगवान् ने कहा—'इच्छा का संयम करो। इच्छा का संयम नहीं करने वाला दूसरों के अधिकारों और अधिकृत वस्तुओं का हरण करता है। जो व्यक्ति दूसरों के अधिकारों और अधिकृत वस्तुओं का हरण करता है, उसके राग-द्वेष बढ़ते हैं। जिसके राग-द्वेष बढ़ते हैं उसके मोह बढ़ता है। जिसके मोह बढ़ता है उसके दुःख बढ़ते हैं। यदि दुःख से छुटकारा चाहते हो तो इच्छा का संयम करो।'

इच्छा-संयम शाश्वत धर्म है। इसकी अनुपालना के लिए—

- वस्तु का अनावश्यक उपयोग मत करो।
- आवश्यकता और अनावश्यकता का विवेक करो।

इच्छा के प्रसंगों से बचो। इच्छा का संयम ही अचौर्य है।

४. भगवान् ने ब्रह्मचर्य के लिए प्रवचन किया। भगवान् ने कहा—'अब्रह्मचर्य की आसक्ति को जीत लेने पर शेष आसक्तियों का पार पाना सरल हो जाता है। महासागर तैर लेने पर नदियों का तैरना कठिन नहीं होता।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्मचर्य शाश्वत धर्म है। इसकी अनुपालना के लिए—

- वाणी का संयम करो।
- दृष्टि का संयम करो।
- स्मृति का संयम करो।
- खाद्य का संयम करो।

आत्म-दर्शन का अभ्यास करो। चेतना की गहराइयों में रम जाना ही ब्रह्मचर्य है।

५. भगवान् ने अपरिग्रह के लिए प्रवचन किया। भगवान् ने कहा—'परिग्रह में आसक्त मनुष्य वैर को बढ़ाता है, इसलिए पदार्थ में मूर्च्छा मत करो।'

अनासक्ति (अमूर्च्छा) शाश्वत धर्म है। इसकी अनुपालना के लिए—

- शब्द में आसक्त मत बनो।
- रूप में आसक्त मत बनो।
- गंध में आसक्त मत बनो।
- रस में आसक्त मत बनो।
- स्पर्श में आसक्त मत बनो।

आसक्ति और उसके निमित्तों से बचना ही अपरिग्रह है। अहिंसा की सिद्धि समिति और गुप्ति से होती है।

१. ईर्या समिति—सावधानीपूर्वक चलना।

२. भाषा समिति—सावधानीपूर्वक बोलना।

३. एषणा समिति—सावधानीपूर्वक आहार लेना और करना।

४. आदान-निक्षेप समिति—सावधानीपूर्वक उपकरण का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग करना।

५. उत्सर्ग समिति—देहिक मलों का सावधानीपूर्वक विसर्जन करना।

६. मन की गुप्ति—मन की प्रवृत्ति का निरोध।

७. वचन की गुप्ति—मौन।

८. काया की गुप्ति—शरीर की प्रवृत्ति का निरोध।

गृहस्थ धर्म

भगवान् ने मुनि-धर्म की स्थापना के बाद गृहस्थ-धर्म की व्याख्या की। भगवान् ने कहा—'गृहस्थ, परिवार, समाज, राज्य आदि दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता, फिर भी वह इन अणुव्रतों का अवश्य पालन करें—

१. बड़ी हिंसा का त्याग।

२. बड़े असत्य का त्याग।

३. बड़ी चोरी का त्याग।

४. स्वदार-सन्तोष।

५. इच्छा का परिमाण—परिग्रह की सीमा।

गृहस्थ अणुव्रतों की पुष्टि के लिए इन शिक्षा-व्रतों का अभ्यास करे—

१. दिशाओं में जाने की मर्यादा कर उससे बाहर जाकर हिंसा आदि का त्याग।

२. सीमा के उपरांत वस्तुओं के उपभोग का त्याग।

३. अनावश्यक वस्तुओं के उपयोग का त्याग।

४. समता का अभ्यास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. दैनिक प्रवृत्ति की सीमा।
६. आत्मोपासना।
७. उपवासपूर्वक आत्मोपासना।

मिथ्यात्व, आसक्ति और भोग के अंधकार से प्रताड़ित मनुष्य ने भगवान् की वाणी में सम्यक्त्व, अनासक्ति और संयम का प्रकाश देखा। हजारों-हजारों व्यक्ति भगवान् की वाणी को शिरोधार्य करने के लिए उद्यत हो गए।

अन्तर्मुखी दृष्टिकोण

क्रियाकाण्ड की प्रधानता के कारण मूल्यांकन का दृष्टिकोण बहिर्मुखी हो रहा था। भगवान् ने उसे बदलने के लिए अंतर्मुखी दृष्टिकोण दिया। जनमानस में यह मूल्य स्थापित हो चुका था कि सिर मुंडा लेने वाला श्रमण, ओंकार जपने वाला ब्राह्मण, अरण्यवास करने वाला मुनि और कुशचीवर धारण करने वाला तपस्वी होता है। भगवान् ने श्रमण, ब्राह्मण, मुनि और तपस्वी के अस्तित्व का अस्वीकार नहीं किया। किन्तु उनके मानदण्ड को स्वीकार नहीं किया। भगवान् ने कहा—'सिर मुंडा लेने मात्र से कोई श्रमण नहीं होता। ओंकार का जप करने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं होता। अरण्यवास करने मात्र से कोई मुनि नहीं होता। कुशचीवर धारण करने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता। इनके मानदण्ड हैं—समता, ब्रह्मचर्य, ज्ञान और तप। समता की साधना करने वाला श्रमण, ब्रह्मचर्य की साधना करने वाला ब्राह्मण, ज्ञान की आराधना करने वाला मुनि और तप की आराधना करने वाला तपस्वी होता है।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानवीय एकता

भगवान् ने जातिवाद को तात्त्विक नहीं माना। उन्होंने कहा—'मनुष्य कर्म (आचार-व्यवहार) से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र होता है। वर्ण-व्यवस्था मनुष्य द्वारा कृत है। यह ईश्वरीय व्यवस्था नहीं है।

आत्मा ही परमात्मा

मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। सुख-दुःख का कर्त्ता वह स्वयं ही है। वह ईश्वरीय सत्ता से संचालित नहीं है। आत्मा ही परमात्मा है। उससे भिन्न कोई ईश्वर नहीं है। वह साधना के द्वारा कर्म-मुक्त होकर ईश्वर बन जाता है। भगवान् ने अपनी अनुभववाणी द्वारा व्यक्ति-व्यक्ति में सोए हुए परमात्मा को जगा दिया।

पुरुषार्थ

अकर्मण्यता और आलस्य से रुग्ण जनता को भगवान् ने पुरुषार्थ की प्रेरणा दी। भगवान् ने कहा—'पुरुष! तू पराक्रम कर। जो मनुष्य अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं करता वह अपनी दैवी संपदा के उपभोग से वंचित रह जाता है।'

'जब तक बुढ़ापा न आए, रोग का आक्रमण न हो, इन्द्रियां क्षीण न हों तब तक संयम की साधना में पराक्रम करो।' भगवान् ने भाग्यवाद को अस्वीकार नहीं किया, किन्तु पुरुषार्थ से विमुख जनता को भाग्यवाद की जकड़ से मुक्त किया। भगवान् की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी से समन्वय की धारा प्रवाहित हुई। उसमें अकेले भाग्य का कोई स्थान नहीं है, अकेले पुरुषार्थ का भी स्थान नहीं है। भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की संगति ही उस धारा का प्रवाह है।

इस प्रवाह ने भारतीय जनता को चमत्कार, अकर्मण्यता और प्रमाद से मुक्त कर उसमें यथार्थता, पौरुष और जागृति का रस सींचा। उससे भारतीय आत्मा उत्फुल्ल हो उठी।

ग्यारह स्थापनाएं

वैशाख शुक्ला एकादशी के दिन मध्यम पावापुरी के महासेन उद्यान में भगवान् ने दूसरा प्रवचन किया। उसमें भगवान् ने आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन किया। उस समय वहां विशाल यज्ञ का आयोजन हो रहा था। सोमिल ब्राह्मण ने उसे आयोजित किया था। उसमें भाग लेने के लिए अनेक विद्वान् आए। उनमें इन्द्रभूति गौतम मुख्य विद्वान् थे। उन्होंने भगवान् की गाथा सुनी। वे भगवान् को पराजित करने महासेन उद्यान में पहुंचे। भगवान् ने उन्हें देखकर कहा—'इन्द्रभूति! तुम्हें आत्मा के अस्तित्व में सन्देह है। क्यों, यह सच है न?' भगवान् की बात सुन इन्द्रभूति स्तब्ध रह गए। उनके मन में छिपे हुए सन्देह का उद्‌घाटन कर भगवान् ने उन्हें आकर्षित कर लिया।

इन्द्रभूति गौतम बोले—'भंते! क्या आत्मा है? आप किस आधार पर उसका अस्तित्व बतला रहे हैं?'

भगवान् ने कहा—'गौतम! मैंने आत्मा का प्रत्यक्ष किया है। मैं प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर ही आत्मा का अस्तित्व बतला रहा हूं।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'भंते ! मैं तर्कशास्त्र का अध्येता हूं। क्या आप तर्क के आधार पर आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन नहीं करते ?'

"गौतम ! आत्मा अमूर्त होने के कारण इन्द्रिय द्वारा गम्य नहीं है। तर्क द्वारा इन्द्रियगम्य विषयों को ही सिद्ध किया जा सकता है।'

तर्क प्रत्यक्ष के सामने नत हो गया। इन्द्रभूति अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान् की शरण में आ गए।

अग्निभूति ने इन्द्रभूति की दीक्षा का संवाद सुना। वे आश्चर्यचकित रह गए। उनके मन में कुतूहल पैदा हुआ। वे अपने शिष्य-परिवार के साथ भगवान् के पास गए। अग्निभूति ! तुम्हें कर्म के विषय में सन्देह है ?' यह कहकर भगवान् ने उन्हें चिंतन की गहराई में उतार दिया। मेरे सर्वथा अज्ञात प्रश्न को इन्होंने कैसे जान लिया ? क्या ये प्रत्यक्षज्ञानी हैं ? ये प्रश्न उनके मन में उभरे। लोह चुंबक जैसे लोह को खींचता है वैसे ही भगवान् ने अग्निभूति को अपनी ओर खींच लिया। उस समय भगवान् ने कर्म की व्याख्या की। जीव अपने पुरुषार्थ से सूक्ष्म परमाणुओं को खींचता है। वे परमाणु क्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में जीव के साथ रह जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान का पुरुषार्थ पुरुषार्थ और अतीत का पुरुषार्थ कर्म बन जाता है। भगवान् की प्रत्यक्षानुभूति में अग्निभूति का मन एकरस हो गया। वे अपने परिवार के साथ भगवान् के शिष्य बन गए। इस प्रकार वायुभूति आदि विद्वान् एक-एक कर आते गए और अपने-अपने शिष्य-परिवार के साथ भगवान् के शिष्य बनते गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायुभूति के आने पर भगवान् ने जीव और शरीर की भिन्नता का प्रतिपादन किया।

भगवान् ने कहा—'स्थूल दृष्टि से सूक्ष्म का निर्णय नहीं किया जा सकता। शरीर स्थूल है, मूर्त है। जीव सूक्ष्म है, अमूर्त है। यदि दोनों एक हों तो इन्हें दो मानने का कोई प्रयोजन नहीं रहता। इन्द्रियों की सहायता के बिना मैं देख रहा हूं कि जीव शरीर से भिन्न है। यदि जीव शरीर से भिन्न नहीं होता तो इन्द्रियों की सहायता लिये बिना मैं ज्ञान नहीं कर पाता।'

व्यक्त के आगमन पर भगवान् ने पांच भूतों के अस्तित्व का प्रतिपादन किया।

सुधर्मा के उपस्थित होने पर भगवान् ने जन्म-वैचित्र्य का निरूपण किया।

'सुधर्मा ! तुम मानते हो कि जीव वर्तमान जन्म में जैसा होता है वैसा ही अगले जन्म में हो जाता है। मनुष्य मरने के बाद मनुष्य होता है, पशु मरने के बाद पशु। किन्तु यह मत सही नहीं है। मनुष्य या पशु होने का हेतु मनुष्य या पशु का जन्म नहीं है, किन्तु कर्म है। माया, प्रवंचना और असत्य वचन का प्रयोग करने वाला मनुष्य पशु बनता है। मनुष्य मृत्यु के बाद फिर मनुष्य बन सकता है, जो प्रकृति से भद्र, विनम्र, दयालु और ईर्ष्यारहित होता है।'

मंडित के सामने भगवान् ने बन्ध और मोक्ष की व्याख्या की। उन्होंने कहा—'मंडित ! जीव के कर्म का बन्ध होता है। वह सादि है या अनादि—यह प्रश्न तुम्हें आन्दोलित कर रहा सादि है तो विकल्पत्रयी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यूह को तोड़ा नहीं जा सकता।

पहला विकल्प—'क्या पहले जीव उत्पन्न होता है और पीछे कर्म ?'

दूसरा विकल्प—'क्या पहले कर्म उत्पन्न होता है और पीछे जीव ?'

तीसरा विकल्प—'क्या जीव और कर्म दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं ?'

यदि बन्ध अनादि है तो उससे मुक्ति नहीं पाई जा सकती, जीव का मोक्ष नहीं हो सकता। आर्य पंडित ! तुम एकांगी दृष्टि से देखते हो इसलिए ये उलझनें तुम्हें आन्दोलित कर रही हैं। तुम अनेकांत दृष्टि से देखो, कोई उलझन नहीं है। जीव और कर्म का सम्बन्ध आदि भी है और अनादि भी है। ऐसा कोई समय नहीं जब जीव के कर्म का बन्धन नहीं था। किन्तु पुराने कर्म फल देकर चले जाते हैं और नए-नए कर्म-परमाणुओं का सम्बन्ध होता रहता है अतः प्रवाह रूप से कर्म-सम्बन्ध अनादि है और व्यक्तिशः वह सादि है।'

भगवान् ने मौर्य और अकंपित के सामने क्रमशः देव और नारक के अस्तित्व की व्याख्या की।

अचलभ्राता के उपस्थित होनें पर भगवान् ने पुण्य और पाप का निरूपण किया।

भगवान् ने बताया—'पुण्य और पाप काल्पनिक नहीं हैं। ये मनुष्य द्वारा विहित विधान से नियन्त्रित नहीं हैं। ये मनुष्य की सहज वृत्तियों से होने वाले तथ्य हैं। सत् प्रवृत्ति से पुण्य के और असत् प्रवृत्ति से पाप के परमाणु जीव के साथ सम्बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं।'

मेतार्य को संबुद्ध करने के लिए भगवान् ने परलोक की व्याख्या की।

भगवान् ने कहा—'जिसका पूर्व और पश्चात् नहीं है, उसका मध्य नहीं हो सकता। मेतार्य ! यदि तुम पूर्वजन्म में नहीं थे और अगले जन्म में नहीं होओगे तो वर्तमान जन्म में कैसे हो सकते हो ? जिसका वर्तमान में अस्तित्व है, उसका अस्तित्व अतीत में भी होगा और भविष्य में भी होगा। अस्तित्व त्रैकालिक होता है। वह कभी लुप्त नहीं होता। इस विश्व में जितने तत्त्व थे, उतने ही हैं और उतने ही होंगे। उनमें से एक अणु भी न कम होगा और न अधिक। फिर तुम्हारा अस्तित्व कैसे समाप्त हो जाएगा ? अस्तित्व के प्रवाह में परलोक स्वतः प्राप्त है।'

प्रभास को निमित्त बनाकर भगवान् ने निर्वाण की चर्चा की। भगवान् ने कहा—'प्रभास ! निर्वाण का अर्थ समाप्त होना नहीं हैं। दीप का निर्वाण होता है तब वह मिट नहीं जाता, किन्तु बदल जाता है। तैजस परमाणु तमस् के रूप में बदल जाते हैं। जीव के निर्वाण का अर्थ उसके भव-पर्याय का बदल जाना है। जो जीव देह और कर्म के कारण विभिन्न भवों में विभिन्न रूप धारण करता था वह निर्वाण-दशा में देह और कर्म से मुक्त होने के कारण भवभ्रमण नहीं करता। वह अपने मौलिक स्वभाव में स्थित हो जाता है। अनात्मा का आत्मा से पृथक् हो जाना और आत्मा का अपने रूप में स्थित हो जाना ही निर्वाण है।'

भगवान् ने जीव आदि तत्त्वों की अनेकान्तदृष्टि से स्थापना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की। एकांगी दृष्टिकोण के कारण ये तत्त्व विवादास्पद बने हुए थे। उनके खंडन-मंडन की परम्परा चल रही थी।

इन्द्रभूति गौतम जैसे विद्वान् उस खंडन-मंडन के मायाजाल में उलझ रहे थे। भगवान् ने खंडन-मंडन के जाल से परे ले जाकर उन्हें समन्वय का दृष्टिकोण दिया। उन्होंने उस दृष्टिकोण से देखा और वे यथार्थ-द्रष्टा बन गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५

धर्मतीर्थ-प्रवर्तन

द्विविध धर्म

धर्म शाश्वत है। वह स्वयं प्रवर्तित है। उसका प्रवर्तन किया नहीं जा सकता। यह वस्तु-सत्य है। व्यवहार का सत्य इससे भिन्न है। इसके अनुसार धर्म का और उसकी परम्परा को गतिशील रखने के लिए तीर्थ (प्रवचन या संघ) का प्रवर्तन किया जाता है। भगवान् महावीर धर्म का प्रवचन कर धर्म-संघ का सूत्रपात कर धर्मतीर्थ का प्रवर्तक बने। उनके धर्म-संघ में सबसे पहले इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह ब्राह्मण विद्वान् अपनी अपनी शिष्य संपदा के साथ दीक्षित हुए।

भगवान् आत्मवादी थे। उनके सामने प्रथम स्थान आत्मा का था। मनुष्य का स्थान दूसरा था। भगवान् मानवतावादी थे। उनके सामने प्रथम स्थान मनुष्य का था। वे जाति को मूल्य नहीं देते थे। भगवान् के कैवल्य का संवाद सुनकर चंदना भी वहाँ पहुंच गई थी। वैदिक परम्परा में स्त्री को मुनि–धर्म में दीक्षित करना वर्जित था। बौद्ध धर्म उस समय तक उदय में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं आया था। भगवान् पार्श्व के संघ में साध्वियां थीं। पर कुछ साध्वियां साधु जीवन से मुक्त हो विभिन्नि धाराओं में जा चुकी थीं। कुछ मिलाकर स्त्री के लिए संन्यास का वातावरण अनुकूल नहीं रहा। स्त्री का संन्यास-ग्रहण एक प्रकार से निषिद्ध हो चुका था।

राजकुमारी चंदना ने दीक्षित होने की भावना प्रकट की। उसके साथ कुछ दूसरी महिलाएं भी दीक्षित होना चाहती थीं। भगवान् ने उनको मुनि-धर्म में दीक्षित किया।

भगवान् ने दो प्रकार के धर्म की व्याख्या की—

१. अनगार धर्म—मुनि-धर्म।

२. सागार धर्म—गृहस्थ-धर्म।

धर्म का स्वरूप दो प्रकार का नहीं होता। इस द्विविध-धर्म के प्रतिपादन का आधार क्षमता-भेद है। जिसमें गृहत्याग की क्षमता होती है वह महाव्रत रूप मुनिधर्म को स्वीकार करता है। जो घर में रहते हुए संयम-पथ पर बढ़ना चाहता है वह अणुव्रत रूप गृहस्थ धर्म को स्वीकार करता है।

इन्द्रभूति गौतम आदि पुरुषों और चंदना आदि स्त्रियों ने भगवान् के पास मुनिधर्म तथा कुछ पुरुषों और स्त्रियों ने गृहस्थ धर्म स्वीकार किया। भगवान् के पहले साधु और पहली साध्वी का नाम मिलता है वैसे पहले श्रावक और पहली श्राविका का नाम नहीं मिलता।

साधना-काल में भगवान् अकेले थे। न कोई शिष्य था और न कोई अनुयायी। अब भगवान् अकेले नहीं रहे। उनके शिष्य और अनुयायी दोनों हो गए। तीर्थ स्थापित हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम्परा कहती है—भगवान् ने साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका—इस चतुर्विध तीर्थं की स्थापना की। पर प्रश्न होता है कि कैवल्य-प्राप्त भगवान के मन में तीर्थ-स्थापना की आकांक्षा शेष क्यों रही ? तीर्थं का अर्थं है प्रवचन। भगवान् ने प्रवचन किया, इसलिए वे तीर्थङ्कर बन गए। आत्म-साक्षात्कार करने वाले व्यक्ति का प्रवचन निष्फल नहीं होता। फलत: उसका आकर्षण पा तीर्थं संगठित हो गया। उसने भगवान् की वाणी को सुरक्षित रखा। आज भी उसे सुरक्षित रखे हुए है।

भगवान् की वाणी आत्मानुभव की वाणी है। उसमें अध्यात्म की अद्‌भुत गरिमा और अनेकान्त का अविरल प्रवाह है। हिंसा, एकांगी आग्रह, विवाद, कलह, युद्ध, असंतुलन, अशान्ति, भोग-विलास और आकांक्षा—ये शाश्वत समस्याएं हैं। इनके तामसिक आवरण से आवृत जगत् को प्रकाश-किरण की अपेक्षा रहती है। उस अपेक्षा की पूर्ति में भगवान् की वाणी सक्षम है। शाश्वत समस्याओं के सन्दर्भ में वह चिरपुराण, चिरनवीन और स्थिर आलोकपुंज है।

अनेकान्त का मन्त्रदान

इन्द्रभूति गौतम प्रकाण्ड पंडित और सर्व विद्याओं के पारगामी विद्वान् थे। उनमें ज्ञान का प्रचुर अहंकार था। जनश्रुति है कि विद्या विनय देती है, अहं को मिटाती है। प्रतीति है कि विद्या अहंकार बढ़ाती है, विनम्रता को कम करती है। क्या जनश्रुति सत्य है या प्रतीति ? अनेकांत दृष्टि से दोनों सत्य हैं। आत्मविद्या विनय देती है, यह भी सत्य है और लौकिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्या अहंकार बढ़ाती है, यह भी सत्य है। इन्द्रभूति जैसे ही आत्मविद्या की सीमा में आए वैसे ही उनका अहंकार विलीन हो गया। वे विनम्र हो गए। उनमें नई-नई जिज्ञासाएं उभर आईं। वे भगवान् के पास गए और जिज्ञासा के स्वर में बोले—'भंते ! तत्त्व क्या है ?'

भगवान् बोले—'उत्पन्न होना।'

गौतम ने फिर पूछा—'भंते ! तत्त्व क्या है ?'

भगवान् ने कहा—'नष्ट होना।'

गौतम ने तीसरी बार फिर पूछा—'भंते ! तत्त्व क्या है ?'

भगवान् ने कहा—'ध्रुव रहना।'

भगवान् ने इस त्रिपदी (उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य) के रूप में गौतम को अनेकान्त का बीज-मन्त्र दे दिया, अपने दर्शन का गूढ़ तत्त्व समझा दिया।

नित्यवादी दर्शन तत्त्व को शाश्वत और अनित्यवादी दर्शन उसे परिवर्तनशील मानते थे। भगवान् को ये दोनों मत मान्य नहीं थे। उनके दर्शन में केवल शाश्वत या केवल अशाश्वत जैसा कोई तत्त्व नहीं है। जो तत्त्व है वह शाश्वत और अशाश्वत का समन्वय है। तत्त्व में उत्पाद और व्यय होते हैं, इसलिए वह परिवर्तनशील है। उसका स्वभाव ध्रुव होता है, इसलिए वह शाश्वत है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—इन तीनों की समन्विति का नाम तत्त्व है।

जिसका अस्तित्व है, जो सत् है, वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त होगा। उत्पाद-व्यय-शून्य ध्रौव्य और ध्रौव्य-शून्य उत्पाद-व्यय कभी नहीं हो सकते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस उपासना में भगवान् ने गौतम को तत्त्व के दृष्टिकोण का उपदेश दिया। इस तत्त्व-दर्शन के द्वारा गौतम में वस्तु-सत्य को देखने की क्षमता उत्पन्न हो गई।

गौतम ने अनेकान्तदृष्टि को आत्मसात् किया और उसी के माध्यम से भगवान् के सिद्धान्तों का द्वादशांगो में गुंफन किया। उसके बारह अंग और विषय ये हैं—

१. आचारांग	—	आचार और दर्शन।
२. सूत्रकृतांग	—	आचार और दर्शन।
३. स्थानांँग	—	इसमें एक से दस तक की सख्या में आचार और दर्शन का प्रतिपादन है।
४. समवायांग	—	इसमें सांख्यिक पद्धति में आचार और तत्त्वदर्शन के विभिन्न विषयों का प्रतिपादन है।
५. भगवती	—	तत्त्वशास्त्र-दर्शनशास्त्र आदि।
६. ज्ञाताधर्मकथा	—	दृष्टान्त और कथाएं।
७. उपासकदशा	—	श्रावक का आधार-धर्म।
८. अन्तकृतदशा	—	मुक्त मनुष्यों का वर्णन।
९. अनुत्तरोपपातिकदशा	—	अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों का वर्णन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१०. प्रश्नव्याकरण	—	पांच आश्रवों और पाँच संवरों का वर्णन[1]।
११. विपाक	—	कर्मफल शास्त्र।
१२. दृष्टिवाद	—	नवविद्या।

गौतम की भांति दूसरे विद्वान् भी भगवान् की उपासना में गए। उन्होंने भी तत्त्व की जिज्ञासा की। भगवान् ने अनेकान्त का मन्त्र देकर उनकी क्षमता को जागृत किया। वे जैसे लौकिक और वैदिक विद्याओं के पारगामी विद्वान् थे वैसे ही आर्हत् विद्या के भी पारगामी विद्वान् हो गए।

संघ-व्यवस्था

भगवान् महावीर अहिंसा और समता के मन्त्रदाता थे। स्वतन्त्रता अहिंसा की निष्पत्ति है। भगवान् ने मुक्ति का मार्ग बताया। उसमें अनुशासन भी है, संयम भी है पर थोपा हुआ नियन्त्रण नहीं है। भगवान् ने साधु-संघ को नियन्त्रित नहीं किया, किन्तु आत्मानुशासन से अनुशासित किया। उनका साधु संघ नौ गणों में विभक्त था। इन्द्रभूति गौतम आदि ग्यारह गणधर उनका संचालन करते थे। सात गणधर सात गणों का नेतृत्व कर रहे थे। अकंपित और अचलभ्राता आठवें तथा मेतार्य और प्रभास नौवें गण का नेतृत्व कर रहे थे।

साध्वी-संघ का नेतृत्व महासती चंदनबाला कर रही थीं।

---

१. प्रश्नव्याकरण के प्राचीन रूप में अंगुष्ठ, प्रश्न आदि विद्याओं का वर्णन था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर की वाणी से प्रभावित होकर सभी जातियों, कुलों और वर्गों की महिलाएं दीक्षित हुई थीं। मगध सम्राट् श्रेणिक की अनेक रानियां भगवान् के पास दीक्षित हुई थीं। अन्य राजाओं, सामंतों और श्रेष्ठियों की पत्नियां भी प्रव्रजित हुई थीं। महासती चंदनबाला ने उन सबका कुशलता के साथ पथ-दर्शन किया।

भगवान् का संघ दर्शन, ज्ञान और चारित्र—इन तीनों धर्मों की आराधना कर रहा था। ज्ञान के विकास का दायित्व 'उपाध्याय' पर होता था। गण की व्यवस्था का कार्य 'प्रवर्तक' करते थे। धर्मप्रचार और संघविकास का कार्य 'गणावच्छेदक' संभालते थे। गण में दीक्षित साधुओं की भावना को गतिशील बनाना और अधृति उत्पन्न हो जाने पर पुनः धृति उत्पन्न करना, यह कार्य 'स्थविर' का था। साध्वी संघ के संचालन का दायित्व 'प्रवर्तनी' पर होता था। इस प्रकार विभिन्न पदों पर नियुक्त मुनि विभिन्न दायित्वों का निर्वहन करते थे। धर्म-संघ की सारी व्यवस्था गणतन्त्रीय शासन-पद्धति के आधार पर चलती थी।

भगवान् वस्तु-सत्य और व्यवहार-सत्य—इन दोनों नयों के समन्वयकर्ता थे। कुछ संघ वस्तु-सत्य का मार्ग अपनाते तो व्यवहार-सत्य का लोप कर संगठन को गंवा देते और कुछ व्यवहार-सत्य का मार्ग अपनाते तो वास्तविक सत्य से शून्य हो जाते। भगवान् वस्तु-सत्य के प्रवक्ता थे, इसलिए उनका संघ परमार्थ से शून्य नहीं था और वे व्यवहार-सत्य के प्रवक्ता थे, इसलिए उनका संघ सुव्यवस्थित और सुसंगठित था। इसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थिति के आधार पर नियुंक्तिकार ने लिखा है—

'यदि जिनमत को स्वीकार करना चाहते हो तो निश्चय और व्यवहार दोनों को मत छोड़ो। निश्चयनय को छोड़ने पर तुम सत्य से वंचित हो जाओगे और व्यवहारनय को छोड़ने पर तुम संघीय संगठन से शून्य हो जाओगे।'

इसी सिद्धान्त के आधार पर आज भी जैन शासन में सत्य और संगठन—दोनों साथ-साथ चल रहे हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६

मूल्य-परिवर्तन

भगवान् तीस वर्ष तक घर में रहे। साढ़े बारह वर्ष तक साधना करते रहे। तेतालीसवें वर्ष में केवली हो गए। केवली होने के बाद भगवान् ने शाश्वत धर्म की व्याख्या की। जन-जन का उद्धार और जनता की जिज्ञासा का समाधान किया।

भगवान् वैशाली से विहार कर कौशाम्बी गए। महाराज शतानीक की बहन जयंती ने भगवान् से कुछ प्रश्न पूछे—

'भंते ! जीवों का सोना अच्छा है या जागना अच्छा है ?'
आर्ये ! सोना भी अच्छा है, जागना भी अच्छा है।'

'भंते ! यह कैसे ?'

'आर्ये ! अधर्मनिष्ठ जीव सोते रहते हैं तब वे दूसरे जीवों को पीड़ित करने से बच जाते हैं, इसलिए उनका सोना अच्छा है। धर्मनिष्ठ जीव जागते हैं तब धर्म का अभ्यास करते हैं। वे दूसरों को पीड़ित नहीं करते। इसलिए उनका जागना अच्छा है।'

'भंते ! जीवों का दुर्बल होना अच्छा है या सबल होना अच्छा है ?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'आर्ये ! दुर्बल होना भी अच्छा है और सबल होना भी अच्छा है।'

'भंते ! यह कैसे ?'

'आर्ये ! अधार्मिक मनुष्य अनैतिक साधनों से जीविका का अर्जन करते हैं। ऐसे मनुष्यों का दुर्बल होना अच्छा है। धार्मिक मनुष्य नैतिक साधनों से जीविका का अर्जन करते हैं। ऐसे मनुष्यों का सबल होना अच्छा है।'

भगवान् हर तत्त्व को अनेकान्तदृष्टि से देखते। उसका सापेक्षवाणी से प्रतिपादन करते। सापेक्षवाणी द्वारा प्रतिपादित तत्त्व जिज्ञासु के लिए सहज सुबोध हो जाता।

भगवान् कृतंजला नगरी के छत्रपलासक चैत्य में विराज रहे थे। कृतंजला के निकट ही श्रावस्ती नाम की नगरी थी। वहां स्कंदक नाम का परिव्राजक रहता था। एक दिन पिंगल निग्रंन्थ स्कंदक के परिव्राजकावास में गए और पूछा—

लोक सांत है या अनंत ?

जीव सांत है या अनंत ?

सिद्धि सांत है या अनंत ?

सिद्ध सांत है या अनंत ?

स्कंदक इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके। वे स्वयं संदेह से घिर गए। उन्हें पता चला कि कृतंजला के छत्र-पलासक चैत्य में भगवान् महावीर विहार कर रहे हैं। वे परिव्राजकावास से प्रस्थान कर भगवान् महावीर के पास पहुंचे। भगवान् ने स्कंदक के प्रश्नों का उद्‌घाटन कर दिया वे आश्चर्य-चकित रह गए। भगवान् ने कहा—'स्कंदक ! यह लोक सांत भी है, अनंत भी है। द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से लोक सांत है। काल और पर्याय की अपेक्षा से वह अनंत है। इसी प्रकार जीव,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धि और सिद्ध भी द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से सांत हैं। काल और पर्याय की अपेक्षा से वे अनंत हैं।' भगवान् के उत्तर से स्कंदक को अनेकांतदृष्टि प्राप्त हो गई। वे स्वयं सत्य के व्याख्याता बन गए।

भगवान् ने अनेकांतदृष्टि देकर हज़ारों-हज़ारों व्यक्तियों को चक्षुष्मान् बनाया।

भगवान् के संघ में चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार साध्वियाँ दीक्षित हुईं। लाखों गृहस्थ श्रावक (अणुव्रती) बने। उनके अनुयायियों, प्रशंसकों और समर्थकों की संख्या काफी बड़ी थी। उनमें उस युग के सुप्रसिद्ध व्यक्ति सम्मिलित थे।

भगवान् जातिवाद को अतात्त्विक और समता-विरोधी मानते थे। इसलिए उनके संघ में सभी जातियों के लोग दीक्षित हुए। उनके ग्यारह प्रमुख शिष्य थे।[१] ये सभी ब्राह्मण थे। इनका

---

[१]

नाम	गोत्र	गाँव	शिष्य
१. इन्द्रभूति	गौतम	गोबरगांव	५००
२. अग्निभूति	गौतम	गोबरगांव	५००
३. वायुभूति	गौतम	गोबरगांव	५००
४. व्यक्त	भारद्वाज	कोल्लाग सन्निवेश	५००
५. सुधर्मा	अग्निवैश्यायन	कोल्लाग सन्निवेश	५००
६. मंडित	वाशिष्ठ	मौर्य सन्निवेश	३५०
७. मौर्यपुत्र	काश्यप	मौर्य सन्निवेश	३५०
८. अकंपित	गौतम	मिथिला	३००
९. अचलभ्राता	हारित	कौशल	३००
१०. मेतार्य	कौंडिन्य	कोशाम्बी	३००
११. प्रभास	कौंडिन्य	राजगृह	३००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिष्य-परिवार भी जाति से ब्राह्मण था। भगवान् के चवालीस सौ मुनि ब्राह्मण जाति से आए थे। यह संख्या प्रथम वार दीक्षित होने वाले मुनियों की है। इनके बाद ब्राह्मण जाति से दीक्षित होने वालों की निश्चित संख्या ज्ञात नहीं है।

क्षत्रिय जाति के लोग भी बड़ी संख्या में दीक्षित हुए थे। दशार्णपुर (विदिशा) के राजा दशार्णभद्र, सिन्धु-सौवीर के राजा उद्रायण, हस्तिनागपुर के राजा शिव आदि अनेक क्षत्रिय राजे भगवान् के पास दीक्षित हुए। कौशाबी के महाराज शतानीक की रानी मृगावती, मगध सम्राट् श्रेणिक को अनेक रानियां भी भगवान् के संघ में दीक्षित हुईं।

धन्ना, शालिभद्र, अनाथी आदि वैश्य तथा अर्जुनमाली आदि शूद्र जाति के लोग भी भगवान् के संघ में दीक्षित हुए। सभी व्यक्तियों के लिए संघ-प्रवेश का द्वार खुला था।

जब सब जातियों के लोगों के लिए संघ-प्रवेश का द्वार खुला था तब सब वर्गों के लिए वह खुला कैसे नहीं होता? भगवान् के धर्मशासन में राजे दीक्षित हुए। वहां कर्मकर भी दीक्षित हुए। भगवान् ने उन सबको समता धर्म में दीक्षित किया और समत्व की भावना से ही अनुशासित किया। कभी-कभी कुछ साधुओं के पुराने संस्कार जागृत हो उठते और जाति एवं वर्ग का अहं उन्हें सताने लग जाता। उस अहं के उपशमन के लिए भगवान् समता की सुधा का सिंचन करते। एक बार ऐसा प्रसंग आने पर भगवान् ने साधुओं को आमंत्रित कर कहा—'मैंने समता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म का प्रतिपादन किया है। तुम सब समता के शासन में दीक्षित हुए हो। जाति, कुल और ऐश्वर्य का मद विषमता उत्पन्न करता है। तुम मद को छोड़ मृदुता के पथ पर आए, विषमता को छोड़ तुमने समता का वरण किया। क्या फिर उस पुराने पथ की स्मृति उचित है? तुम देखो मद से उन्मत्त मनुष्य दूसरों को परछाईं की भांति देखता है।[१] दूसरों का तिरस्कार करता है। दूसरों का तिरस्कार करने वाला विषमता के संसार में पर्यटन करता रहता है।[२]

'तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, उग्रपुत्र या लिच्छवि चाहे किसी भी जाति या कुल में उत्पन्न हुए पर अब तुम समता के शासन में प्रव्रजित हो, अहिंसक होने के कारण परदत्तभोजी हो, फिर यह जाति और कुल का अभिमान कैसा?[३] यह जाति और कुल तुम्हें त्राण नहीं दे सकता। विद्या और चरित्र का आचरण ही तुम्हें

---

१. सूत्रकृतांग १।१३।८

अण्णं जणं पस्सति बिंबभूयं।

२. सूत्रकृतांग १।२।२।२

जो परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तइ महं।

३. सूत्रकृतांग १।१३।१०

जे माहणे खत्तिय जायए वा,
तहुग्गपुत्ते तह लेच्छई वा।
जे पव्वइए परदत्तभोई,
गोत्तेण जे थब्भइ माणबद्धे॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्राण दे सकता है।'[1] इसलिए तुम जाति, कुल और ऐश्वर्य का मद मत करो। तुम सब गोत्रों से अतीत हो चुके हो। तुम मोक्ष पाना चाहते हो। वहां कोई गोत्र नहीं है। उसे वही पा सकता है, जो गोत्र के झमेले में उलझा नहीं होता।[2]

'तुममें से कोई पहले राजा रहा है और कोई नौकर या नौकर का भी नौकर। किन्तु समता के शासन में दीक्षित होने के बाद न कोई राजा है और न कोई नौकर। इसलिए सब परस्पर समता का व्यवहार करो।'[3]

भगवान् की इस समता-वाणी ने साधु-संघ को समत्व की धारा में प्रवाहित कर दिया।

विभिन्न देशों में जन्मे हुए, विभिन्न आहारों से पले-पुसे मनुष्य समता के शासन में दीक्षित होकर परस्पर भाई बन गए। भगवान् ने उस विषमता के युग में समता की ऐसी लौ प्रज्वलित की जिसकी ज्योति आज के सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी

---

१. सूत्रकृतांग १।१३।११
न तस्स जाई व कुलं व ताणं।
नन्नत्थ विज्जाचरणं सुचिण्णं॥

२. सूत्रकृतांग १।१३।१६
ते सव्वगोत्तावगया महेसी।
उच्चं अगोत्तं च गतिं वयंति॥

३. सूत्रकृतांग १।२।२।३
जे यावि अणायगे सिया, जे वि य पेसगपेसगे सिया।
जे मोणपयं उवट्ठिए, नो लज्जे समयं समा चरे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रेरणा है।

भगवान् महावीर ने सत्य का साक्षात्कार किया। उन्होंने प्रजा-हित के लिए कुछ सत्यों का प्रतिपादन किया। उनकी वाणी को उस युग की जनता ने अपनाया। किन्तु कोई भी नया विचार एक साथ समाजमान्य नहीं होता। वह अनेक भूमिकाओं से संक्रान्त होकर लम्बे समय के बाद व्यापक मान्यता प्राप्त करता है। स्वतन्त्रता, सापेक्षता, सहअस्तित्व, सामुदायिकता, सेवा, शस्त्र-वर्जन, युद्ध-वर्जन, प्रामाणिकता, ज्ञान और आचार का समन्वय, अहिंसा, असंग्रह, ब्रह्मचर्य, निरामिष भोजन—ये उनकी दर्शन ज्योति के कुछ विशिष्ट स्फुलिंग हैं।

भगवान् ने अध्यात्म की भूमिका पर कहा था—'मैं संयम और तप के द्वारा अपने आप पर शासन करूं, यह मेरे लिए अच्छा है, कोई दूसरा डंडे के द्वारा मुझ पर शासन करे, यह मेरे लिए अच्छा नहीं है।'

स्वतन्त्रता का विचार व्यवहार की भूमिका पर विकसित हुआ। उपनिवेशवाद के विरुद्ध क्रान्ति हुई। प्रत्येक देश स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलित हो उठा। वर्तमान विश्व का बड़ा भाग आज स्वतन्त्र है। आज का अधिनायकवाद भी प्रजातन्त्र का मुखौटा पहने बिना नहीं चल सकता। आज विषमता भी समता के आचरण में ही पल सकती है। सहअस्तित्व, मानवीय एकता, शस्त्र-वर्जन तथा युद्ध-वर्जन के प्रति आज जितना प्रबल जनमत है उतना शायद अतीत में नहीं था। वर्तमान में इन विचारों के साथ किसी का नाम जुड़ा हुआ नहीं है। ये या इनकी कोटि के विचार विश्व के अन्य महापुरुषों ने भी दिये हैं। पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुसन्धान करनें पर पता चलेगा कि इन विचारों के पीछे भगवान् महावीर के अनुभवों और वाणी का कितना बड़ा बल है ?

भगवान् ने हजारों-हजारों ज्ञानी और आचारवान् व्यक्तियों का निर्माण किया। वे भगवान् के सिद्धान्तों के प्रयोग और प्रचार में लग गए। सूर्य की हजार रश्मियां एक साथ प्रकाश फैलाने लग गईं। अभयकुमार भगवान् का उपासक था। मगध सम्राट् श्रेणिक का पुत्र और महामन्त्री। उसने भगवान् के मूल्य-परिवर्तन के कार्य में बहुत सहयोग किया। एक लकड़हारा भगवान् के संघ में प्रव्रजित हुआ। वह राजगृह में ही रहता था और वहीं लकड़ियां बेचा करता था। वह मुनि बनने के कुछ ही दिनों बाद सचिवालय के पास से जा रहा था। अभयकुमार ने उसे देखा। वह तत्काल सचिवालय से नीचे उतरा और उसने मुनि के चरणों में विनम्र प्रणाम किया। मंत्री-परिषद् के सदस्य अभयकुमार के इस कार्य पर मुस्कराए। मगध साम्राज्य का महामंत्री लकड़हारे मुनि के चरणों में अपना सिर झुकाए, यह उनके अहं को मान्य नहीं हुआ। उन्होंने आखिर पूछ ही लिया—'महामंत्री! आपने जिसके चरणों में सिर झुकाया, वह कल तक लकड़हारा था। क्या आपको इसका पता है?'

'पता कैसे न हो? मैं उसकी दीक्षा में सम्मिलित हुआ हूं।'

'तब फिर आपने उसे प्रणाम कैसे किया?'

'भगवान् महावीर ने भोग के स्थान पर त्याग की प्रतिष्ठा की है।'

'उसने क्या भोग छोड़ा, उसके पास कुछ था ही नहीं।'

अभयकुमार ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्री-परिषद् के सदस्यों के पास महामंत्री का पत्र पहुंचा कि यदि आप स्त्री और अग्नि का प्रयोग छोड़ दें तो आप राज्य-कोष से दो करोड़ मुद्राएं प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे दिन मंत्री-परिषद् के सब सदस्य महामंत्री के पास एकत्र हुए। उन्होंने महामंत्री के प्रस्ताव पर चर्चा शुरू की। उन्होंने कहा—'महामंत्री! करोड़ रुपये पास में हों तभी स्त्री के सहवास का सुख प्राप्त हो सकता है और आप स्त्री का त्याग करने पर करोड़ रुपये देते हैं, यह बात जंची नहीं। स्त्री को छोड़ दें तब फिर करोड़ रुपये लेकर भी क्या करेंगे? जिसे अग्नि पर भोजन न पकाना हो वह या तो भूखा रहे या मांगकर खाए। जिसे मांगकर खाना हो वह करोड़ रुपये लेकर क्या करेगा? प्रस्ताव की दोनों शर्तें बुद्धिमत्ता से शून्य हैं।'

'क्या इन दोनों को छोड़ने वाला भोग को नहीं छोड़ता? क्या वह त्यागी नहीं होता?' महामंत्री ने पूछा।

'अवश्य होता है।' सबने एक स्वर से कहा।

महामंत्री बोला—'क्या उस लकड़हारे ने स्त्री को नहीं छोड़ा? यह भोग हर आदमियों को सुलभ है। उसने भोग को अपने लिए दुर्लभ ही नहीं, असम्भव बना दिया। फिर वह त्यागी कैसे नहीं? उसने अग्नि का प्रयोग सर्वथा छोड़ दिया, फिर वह त्यागी कैसे नहीं? मगध के महामंत्री का सिर लकड़हारे के सामने नहीं झुका, किन्तु त्यागी के सामने झुका था।'

महामंत्री के तर्क के सामने सबके सिर झुक गए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म का सामाजिक मूल्य :

गृहस्थ धर्म की आचारसंहिता का विस्तार

भगवान् महावीर का युग धर्म-प्रधान युग था। राजा और प्रजा सभी लोग धर्म के सामने नतमस्तक थे। चारों ओर धर्म की शंखध्वनि सुनाई पड़ती थी। किन्तु धर्म का स्वरूप था व्यक्तिगत पूजा-पाठ और वह किया जा रहा था स्वर्ग के लिए। उससे समाज को कोई लाभ नहीं मिल रहा था। भगवान् महावीर ने आचार-प्रधान या नीति-प्रधान धर्म का उपदेश दिया। आनन्द भगवान् के पास गया। वह बहुत बड़ा गृहपति था। उसने धर्म की जिज्ञासा की। भगवान् ने अणुव्रत और उसकी सहायक आचार-संहिता का प्रतिपादन किया। आचार संहिता में धर्म का सामाजिक रूप प्रस्फुटित हुआ है।

भगवान् ने कहा—'आनन्द ! तुम अहिंसा का व्रत स्वीकार करना चाहते हो पर तुम्हारा बड़ा कुटुम्ब है। हजारों गाएं हैं। सैकड़ों कर्मकर हैं। हजारों-हजारों लोगों के साथ तुम्हारा सम्पर्क है। उन सबके प्रति निर्मम रहकर तुम अहिंसा के व्रती नहीं बन सकते। तुम किसी निरपराध प्राणी को संकल्पपूर्वक प्राणघात नहीं करोगे। यह तुम्हारा अहिंसा का व्रत है। इसकी अनुपालना के साथ-साथ तुम्हें अहिंसा की आचार-संहिता का भी पालन करना होगा। तुम देखते हो आज के सामाजिक लोग थोड़ा-सा अपराध होने पर अपने कर्मकर वर्ग को डंडे से तथा गाय आदि पशुओं को लाठी से पीटते हैं। वे क्रोध के वशीभूत होकर मनुष्यों और पशुओं को रस्सी से बांधकर डाल देते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके शरीर के अवयव काट लेते हैं। पशुओं पर अधिक भार लादते हैं। अपने आश्रित पशुओं का खान-पान बन्द कर देते हैं। अपने कर्मकरों को आजीविका नहीं देते। ये सब निर्मम व्यवहार हैं। अहिंसा व्रत को सुरक्षा के लिए तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। (१) वध, (२) बन्ध, (३) अंगच्छेद, (४) अतिभार-आरोपण, (५) भक्तपान-विच्छेद—ये पांचों कार्य तुम्हारे लिए आचरणीय नहीं होंगे।

'आनन्द ! तुम सत्य का व्रत स्वीकार करना चाहते हो पर तुम्हारा बहुत बड़ा कृषि का व्यवसाय है, परिवार है, जन-सम्पर्क है। उन सबके प्रति तुम्हारा व्यवहार प्रमत्त होगा तो तुम सत्य के व्रती नहीं बन सकते। तुम सत्यव्रती होने के नाते धरोहर को अस्वीकार नहीं करोगे, झूठी गवाही नहीं दोगे और पशु-भूमि आदि का गलत मूल्य नहीं बतलाओगे।

'सत्य-व्रत की अनुपालना के साथ-साथ तुम्हें उसकी आचार-संहिता का भी पालन करना होगा। सामाजिक लोग बिना सोचे-समझे किसी पर कलंक लगा देते हैं, संदेहवश दोषारोपण कर देते हैं, विश्वास के आधार पर कही हुई रहस्य की बात को प्रकाशित कर देते हैं, गलत परामर्श देते हैं और झूठा दस्तावेज बनाते हैं। ये सब सत्य-विरोधी व्यवहार हैं। सत्य-व्रत की सुरक्षा के लिए तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। (१) सहसा अभ्याख्यान, (२) रहस्य अभ्याख्यान, (३) स्वदार मंत्रभेद, (४) मृषा उपदेश, (५) कूटलेख—ये पांचों काय तुम्हारे लिए अनाचरणीय होंगे।

'आनन्द ! तुम आचौर्यव्रत स्वीकार करना चाहते हो पर क्या तुमने इच्छा पर नियन्त्रण किया है ?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'भंते ! वह किया है इसलिए मैं इस व्रत को स्वीकार कर रहा हूं, अन्यथा मैं इसकी चर्चा ही नहीं करता।'

'आनन्द ! तुम्हें इसकी आचार-संहिता भी पालनी होगी। कुछ लोग स्वयं चोरी नहीं कर पाते पर चोर की चुराई वस्तु को खरीद लेते हैं, चोर को चोरी के लिए प्रेरित करते हैं, विरोधी राज्य की सीमा का अतिक्रमण तथा झूठा तौल और झूठा माप करते हैं। असली वस्तु दिखाकर नकली वस्तु को बेचते हैं, मिलावट करते हैं। ये सब अनियन्त्रित इच्छा के व्यवहार हैं। अचौर्यव्रत की सुरक्षा के लिए तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। (१) स्तेनाहृत, (२) तस्कर प्रयोग, (३) विरुद्ध-राज्यातिक्रमण, (४) कूटतौल-कूटमान, (५) तत्प्रतिरूपक व्यवहार—ये पांचों कार्य तुम्हारे लिए अनाचरणीय होंगे।

'आनन्द ! तुम ब्रह्मचर्य का व्रत स्वीकार करना चाहते हो। बहुत सारे लोग अपनी कामवासना को अनियन्त्रित रखते हैं। वे उसे जीवन का सर्वस्व मानते हैं। मैंने इससे विपरीत सत्य देखा है। जीवन का सर्वस्व है—चेतना के गहरे में स्फूर्त सहज आनन्द। कामवासना उसका सघन आवरण है। क्या तुम उसको दूर करना चाहोगे ?'

'हां, भंते !

'आनन्द ! तुम जानते हो, विष-वैद्य विष की चिकित्सा कैसे करता है ? सांप काटने पर समूचे शरीर में जहर फैल गया। विष-वैद्य उसकी चिकित्सा करता है। वह पहले सारे जहर को एक बिन्दु पर एकत्रित करता है। फिर उसे भी बाहर निकाल देता है। आनन्द ! तुमने विवाह किया है। विवाह की परम्परा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के पीछे यही रहस्य है कि व्यक्ति सर्वत्र फैली हुई वासना को एक में केन्द्रित करता है। मैंने इससे आगे का विधान किया है। उसके अनुसार तुम अपनी वासना को उस बिन्दु से भी हटाते-हटाते ब्रह्मचर्य तक पहुंच जाओगे।

'स्वदारसंतोषव्रत की अनुपालना के लिये तुम्हें उसकी आचार-संहिता पर विशेष ध्यान देना होगा। कामुक वातावरण, कामचर्या, खाद्य-लोलुपता और कामभोग की तीव्र अभिलाषा रखने वाले ब्रह्मचर्य के व्रती नहीं बन सकते। तुम ब्रह्मचारी बनना चाहते हो। इसलिए तुम्हें काम को उत्तेजना देने वाली प्रवृत्तियों से बचना होगा।

'आनन्द ! तुम अपरिग्रह व्रत स्वीकार करना चाहते हो पर इच्छा का परिमाण किए बिना ऐसा नहीं कर सकोगे। कुछ लोग भूमि, घर, सोना-चांदी, कर्मकर, पशु, धान्य तथा अन्य घरेलू सामग्री का अनावश्यक संग्रह करते हैं। तुम ऐसा नहीं कर सकोगे। तुम्हें अपनी इच्छा को आवश्यकता से जोड़ना होगा।'

आनन्द भगवान् के पास इन व्रतों को स्वीकार कर धार्मिक जीवन बिताने लगा। इस धर्म ने केवल आनन्द के जीवन को ही प्रभावित नहीं किया, उससे आनन्द का सारा सम्पर्क-क्षेत्र प्रभावित हो गया।

भगवान् ने आनन्द जैसे हजारों-हजारों व्यक्ति तैयार किए। कर्मकाण्ड के मायाजाल में फंसे हुए समाज को धर्म की नई दिशा प्राप्त हो गई। भगवान् ने साधु-जीवन को बहुत प्रतिष्ठा दी, साथ-साथ गृहस्थ-जीवन में धर्म-विकास के अवकाश का भी प्रतिपादन किया। भगवान् ने एक प्रसंग में कहा—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कुछ भिक्षुओं से गृहस्थों का संयम प्रधान होता है। साधना-शील साधुओं का संयम प्रधान होता ही है।'

भगवान् नें धर्म की ऐसी ज्योति जलाई, जो आज भी व्यक्ति के अपने ही संयम के ईंधन से जल रही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७

वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में जैन धर्म का योगदान

अहिंसा और कषाय-मुक्ति

भगवान् महावीर सत्य को एक ही दृष्टिकोण से नहीं देखते थे। वे एक कोण से नहीं देखते, ऐसा नहीं है। एक कोण से देखना भी आवश्यक है। पर वह कोण समग्र से निरपेक्ष नहीं होना चाहिए। भगवान् ने निष्पत्ति के कोण से देखा तो कहा—'समस्या का मूल हिंसा है।' उत्पत्ति के कोण से देखा तो कहा—'समस्या का मूल कषाय है।' कषाय का अर्थ है रंगा हुआ चित्त और रंगा हुआ मन। राग से रंगा हुआ मन प्रीति का अनुभव करता है। द्वेष से रंगा हुआ मन अप्रीति का अनुभव करता है। प्रीति से लोभ होता है। लोभी मन में माया उपजती है, वासना उभरती है, परिग्रह के प्रति मोह जागता है। द्वेष से रंगा हुआ मन ऐश्वर्य, जाति, बल, रूप आदि का अहंकार करता है। अहंकारी मन में क्रोध उपजता है, घृणा पनपती है। कलह की आग सुलगती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Narja, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग लोभ और माया को जन्म देता है। द्वेष अहंकार और क्रोध को जन्म देता है। क्रोध, अहंकार, माया और लोभ—ये सब समस्याओं को जन्म देते हैं। भगवान् महावीर ने इस सत्य का अनुभव कर कषाय-मुक्ति की साधना का प्रतिपादन किया। कहा जाता है कि अहिंसा परम धर्म है। वह भगवान् महावीर की महान् देन है। यह सत्य है। किन्तु इस सत्य के पीछे यह सत्य छिपा हुआ है कि कषाय-मुक्ति परम-धर्म है। वह भगवान् महावीर की महान् देन है। कषाय बीज है। हिंसा उसका फल है। कषाय-मुक्ति बीज है। अहिंसा उसका फल है। फल को देखने वाले अहिंसा को महावीर की महान् देन बतलाते हैं। बीज को देखने वाले कषाय-मुक्ति की साधना को महावीर की महान् देन बतलाते हैं। दोनों सापेक्ष हैं, इसलिए दोनों ही सत्य हैं।

भगवान् महावीर ने कषाय-मुक्ति और अहिंसा को सर्वथा भिन्न रूप में नहीं देखा। जितनी कषाय-मुक्ति उतनी अहिंसा। जहां अहिंसा वहां निश्चित कषाय-मुक्ति। बीज छिपा रहता है, फल प्रकट हो जाता है। कषाय-मुक्ति छिपी रहती है, अहिंसा हमारे व्यवहार में उतरती है। महावीर ने कषाय-मुक्ति और अहिंसा को एक श्रृंखला में देखा इसीलिए उन्होंने अहिंसा को व्यापक संदर्भ में प्रस्तुत किया। व्यापक सन्दर्भ में अहिंसा का प्रस्तुतीकरण ही उनकी महान् देन है।

भगवान् महावीर ने कहा—अहिंसा सब जीवों के लिए कल्याणकारी है। उससे सबका कल्याण होता है। सामाजिक जीवन जीने वाली मनुष्य जाति का कल्याण तो उसी में है। सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए जैसे-जैसे हिंसा बढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रही है, वैसे-वैसे मनुष्य जाति का कल्याण घट रहा है।

अपरिग्रह को छोड़कर अहिंसा को समझने का प्रयत्न करें तो भगवान् महावीर की अहिंसा को नहीं समझा जा सकता।

संग्रह के लिए हिंसा और हिंसा के लिए संग्रह दोनों साथ-साथ चलते हैं। गौतम नें पूछा—

'भंते ! मनुष्य को बोधि प्राप्त हो सकती है ?'
'हो सकती है।'
'भंते ! वह कैसे प्राप्त होती है ?'
'हिंसा और परिग्रह का त्याग करने से।'
'भंते ! मनुष्य व्रती बन सकता है ?'
'बन सकता है।'
'भंते ! वह व्रती कैसे बन सकता है ?'
'हिंसा और परिग्रह का त्याग करने से।'

भगवान् महावीर की भाषा में जहां अहिंसा है वहां अपरिग्रह जुड़ा हुआ है और जहाँ अपरिग्रह है वहाँ अहिंसा जुड़ी हुई है। आज सत्ता और धन के संग्रह के प्रति हिंसा होती है तब हम सोचते हैं कि हिंसा बढ़ रही है। भगवान् की भाषा में यह बढ़ी हुई हिंसा के प्रति हिंसा है। आज का चिंतन महावीर की उस भाषा को दोहरा रहा है कि हिंसा की वृद्धि को रोकने के लिए सत्ता और धन के एकाधिकार को रोकना आवश्यक है। उसे रोकने का महावीर का उपाय था हृदय-परिवर्तन। आज के राजनीतिक दार्शनिकों ने उसका उपाय बतलाया है दंडशक्ति। किन्तु दंडशक्ति का प्रयोग होने के बाद अब यह विचार-बीज अंकुरित हो रहा है कि जनता का विचार बदले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिना दंडशक्ति सफल नहीं हो सकती।

प्रतिहिंसा से बचने का सौम्य उपाय है परिग्रह की स्वेच्छाकृत मर्यादा। इस मर्यादा का फलित होता है परिग्रह का संविभाग—सम्यक् विभाजन।

अहिंसा और स्वतन्त्रता

महावीर मनुष्य की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं चाहते थे। स्वतन्त्रता का अपहरण हिंसा है। जहाँ हिंसा है वहाँ समस्या है, दुःख है। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए महावीर ने आत्मानुशासन का सूत्र दिया है। उन्होंने कहा—अपने आपको अनुशासित करो। अपने आपको अनुशासित करना सबसे कठिन है। अपने आपको अनुशासित करने वाला वर्तमान और भविष्य में—जीवन की दोनों धाराओं में सुखी होता है।

मेरे लिए यही श्रेष्ठ है कि संयम और तप के द्वारा मैं स्वयं को अनुशासित करूं। कोई दूसरा बंधन और वध के द्वारा मुझे अनुशासित करे, यह मेरे लिए अच्छा नहीं है। महावीर ने अहिंसा की धारा को स्वतन्त्रता की धारा से और स्वतंत्रता की धारा को संयम और तप की धारा से कभी भी पृथक् नहीं देखा।

अहिंसा और समता

जैसे ही अहिंसा का चक्षु उद्घाटित होता है वैसे ही आवरणों से ढकी हुई आत्मा की समानता प्रकट हो जाती है। गौतम ने महावीर से पूछा—'भंते! हाथी और कुंथु की आत्मा समान है?'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् ने कहा—'हां, गौतम ! हाथी और कुंथु की आत्मा समान है ? हाथी का शरीर स्थूल है और कुंथु का शरीर सूक्ष्म है। शरीर का भेद होने पर भी आत्मा के स्वरूप में कोई भेद नहीं है। जैसी आत्मा हाथी की है वैसी ही कुंथु की है। शरीर इन्द्रिय, रंग-रूप, जाति आदि के बाहरी भेदों को देखकर आंतरिक और स्वरूपगत समानता को भुला देने वाला अहिंसक नहीं हो सकता। अहिंसक वही हो सकता है जिसकी दृष्टि बाहरी भेदों को पार कर आंतरिक समानता को देखती रहती है।

'जो आंतरिक समानता को नहीं देखता, वह अपने को उच्च और दूसरों को नीच मानता है अथवा अपने को नीच और दूसरों को उच्च मानता है। वह दूसरों से घृणा करता है या दूसरों द्वारा स्वयं को घृणित अनुभव करता है। वह दूसरों को डराता है या दूसरों से डरता है। ये अहंभाव और हीनभाव की मनोवृत्तियां विषमता पैदा करती हैं। जहाँ विषमता होती है वहाँ हिंसा निश्चित होती है। यह समता का सिद्धान्त सामाजिक व्यवहार का अतिक्रमण नहीं है, उसका सम्यक्करण है। व्यवहार की भूमिका में भी जितना समानता का वर्ताव होता है उतना ही प्रेम बढ़ता है जितना प्रेम बढ़ता है उतनी ही व्यवस्थाएं अच्छे ढंग से चलती हैं, हिंसा कम होती है। हम तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर बाहरी आवरणों में उलझकर आन्तरिक समानता को भूल जाते हैं। हमारा मन हमारे हाथ में नहीं है, इसलिए विषमता का मानस बना लेते हैं। भगवान् ने कहा—'मनुष्य ! तुम अनादिकाल से संसार में जन्म ले रहे हो। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसके तुम माता-पिता, पुत्र, भाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि न हुए हों। फिर किसे तुम मित्र मानोगे और किसे शत्रु? किसे तुम उच्च मानोगे और किसे नीच? किससे घृणा करोगे और किसे अपनाओगे? तुम आज ही नहीं जन्मे हो इसलिए तात्कालिक दृष्टि से मत देखो। तुम पुराण-पुरुष हो, इसलिए दीर्घकालीन दृष्टि से देखो। आत्मा और आत्मा के बीच जो कर्त्ता है उसका अनुभव करो। एकाग्रता के अभ्यास के द्वारा मन को वश में करो। इतना होने पर तुम्हारी सिद्धान्तगत, स्वरूपगत और मानस-स्तरीय समता सध जाएगी। समता सधी कि अहिंसा सध जाएगी। जहां समता वहां अहिंसा। जितनी समता उतनी अहिंसा।

समता का अर्थ है समभाव, न राग और न द्वेष। न आकर्षण और न विकर्षण। न इधर झुकाव और न उधर झुकाव। तराजू के दोनों पलड़े बराबर। जिस व्यक्ति या समाज का अन्तःकरण समता से स्नात हो जाता है, उसका व्यवहार विषम नहीं होता, उसकी व्यवस्था विषमता से पूर्ण नहीं होती। भगवान् ने कहा—'कोई दुःख नहीं चाहता, इसलिए किसी को दुःख मत दो। यह अहिंसा है, यह समता है। तुम्हें इतना ही जानना है। अहिंसा के लिए समता को और समता के लिए अहिंसा को जानना सारे मानवीय ज्ञान की सार्थकता है।'

अहिंसा और सह-अस्तित्व

हम अपने मानसिक स्तर पर विचारों को दो भागों में विभक्त कर देते हैं—भिन्न और अभिन्न। अभिन्न विचार वाले व्यक्तियों के साथ हम रहना चाहते हैं। भिन्न विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले व्यक्तियों के साथ हम रहना नहीं चाहते। उन्हें समाप्त करना चाहते हैं। यह व्यापक संघर्ष है, यही युद्ध है। महावीर ने इस समस्या के अंतस् को देखकर कहा—'मनुष्य कितना स्थूलदर्शी है। वह थोड़े से गहरे में भी उतरकर नहीं देखता। ऊपर-ऊपर से जो भेद दिखाई दे रहा है, उसके नीचे कितना अभेद छिपा हुआ है। ये अभेद और भेद एक ही साथ रहते हैं, इनमें कोई विरोध नहीं है। तब मनुष्य में विरोध और विरोधी को समाप्त करने की दृष्टि क्यों होनी चाहिए ?

यह विरोध अपने ही कषाय का है। यह विरोध अपने ही कषाय से उत्पन्न हिंसा का है। कषाय को शांत करने पर, चित्त और मन को निर्मल करने पर यह विरोध अपने आप मिट जाता है। अभेद वस्तु का धर्म है, वह रहेगा। भेद वस्तु का धर्म है, वह भी रहेगा। अहिंसा का विकास होने पर विरोध नहीं रहता, सह-अस्तित्व में कोई बाधा नहीं रहती। अहिंसा चेतना की विकसित अवस्था है। जिनकी चेतना अविकसित होती है, वे ही मनुष्य दूसरों को केवल भिन्न मानकर विरोधी मानते हैं और उन्हें समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं। विकसित चेतना वाले मनुष्य कोरा भेद कहीं देखते ही नहीं। उनकी दृष्टि भेद पर जाती है, उसी क्षण भेद के साथ जुड़ा हुआ अभेद उनके सामने आ जाता है। यह भेदाभेदात्मक दृष्टिकोण ही सह-अस्तित्व की वास्तविक भूमिका है। केवल अभेद में सहअस्तित्व का प्रश्न ही नहीं उठता। सहअस्तित्व तब होता है जब कोई दूसरा हो, भिन्न हो। केवल भेद में सहअस्तित्व ही नहीं हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकता। उसमें सहअस्तित्व के लिए अपेक्षित सामान्य आधार नहीं मिलता। कुछ अभेद होता है, सामान्य आधार होता है, कुछ भेद होता है, अपनी-अपनी विशेषता होती है तभी सह-अस्तित्व का सिद्धान्त व्यवहार में आता है। अहिंसा तभी उजागर होती है।

अहिंसा और समन्वय

वैचारिक हिंसा शारीरिक हिंसा से कम नहीं है। उससे बड़ी हो सकती है और शारीरिक हिंसा की निमित्त भी हो सकती है। विचार के प्रति मनुष्य का उतना ही महत्त्व होता है, जितना धन के प्रति होता है, अधिक भी हो सकता है। भगवान् महावीर ने वैचारिक परिग्रह की ग्रंथि को खोलने के लिए अनेकान्त की दृष्टि प्रस्तुत की। उन्होंने कहा—'वस्तु के अनन्त धर्मों और पर्यायों को अनन्त चक्षुओं से देखो। उन्हें किसी एक ही चक्षु से मत देखो। जो व्यक्ति वस्तु-सत्य को एक चक्षु से देखता है वह अपने स्वीकृत सिद्धान्त का समर्थन और दूसरों की स्वीकृतियों का खंडन करता है।'

भगवान् महावीर के युग में धर्म-सम्प्रदायों की संख्या कम नहीं थी। वे सब भिन्न-भिन्न विचारों का प्रतिपादन करते थे, परस्पर एक-दूसरे के खंडन-मंडन में ही धर्म को खपा देते थे। नित्यवादी अनित्यवाद का खंडन करते थे और अनित्यवादी नित्यवाद का। भगवान् महावीर ने अपनी प्रज्ञा से देखकर कहा—'कोई भी वस्तु नित्य नहीं है और कोई भी वस्तु अनित्य नहीं है। जो है वह नित्य और अनित्य दोनों से समन्वित है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम जिस वस्तु को जिस क्षण नित्य कहते हो उस क्षण वह अनित्य भी है। जिस क्षण तुम उसे अनित्य कहते हो उस क्षण वह नित्य भी है। तुम्हारी भाषा में ऐसी शक्ति नहीं है कि उसका एक शब्द एक क्षण में दो धर्मों का प्रतिपादन कर सके। इसलिए तुम जो कुछ कहो उसके साथ 'स्यात्' शब्द जोड़कर ही कहो 'स्यात् अस्ति' (सिय अत्थि) किसी दृष्टिकोण से वस्तु है। 'स्यात् नास्ति' (सिय नत्थि) किसी दृष्टिकोण से वस्तु नहीं है। अस्ति और नास्ति के क्षण भिन्न नहीं हैं। जिस क्षण में वस्तु का अस्तित्व है उसी क्षण में उसका नास्तित्व भी है। स्यात् शब्द इसकी सूचना देता है कि जहां अस्तित्व मुख्य है वहाँ नास्तित्व गौण होकर उसके साथ जुड़ा हुआ है। जहां नास्तित्व मुख्य है वहां अस्तित्व गौण होकर उसके साथ जुड़ा हुआ है। वे दोनों एक-दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। वे दोनों धर्म एक साथ नहीं कहे जा सकते, इस दृष्टिकोण से वस्तु स्यात अवक्तव्य (सिय अव्वत्तव्व) है।'

यह स्याद्वाद का दृष्टिकोण वैचारिक द्वन्द्व की समाप्ति का दृष्टिकोण है। इससे सभी विचारधाराओं का समन्वय सधता है। स्याद्वाद से वस्तुओं में समन्वय निर्मित नहीं किया जाता। वह वस्तुओं में स्वभावतः है। स्याद्वाद के द्वारा उस स्वाभाविक धर्म (समन्वय) को व्यक्त किया जाता है। यह समन्वय का मार्ग एकांगी दृष्टिकोण, वैचारिक अभिनिवेश और मताग्रह से होने वाली हिंसा से मुक्ति देने वाला है।

समन्वय के हजारों-हजारों दृष्टिकोण हो सकते हैं। भगवान् महावीर ने उसके सात वर्गीकृत दृष्टिकोण प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किए—

१. नैगम—भेद और अभेद दोनों को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

२. संग्रह—केवल अभेद को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

३. व्यवहार—केवल भेद को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

४. ऋजुसूत्र—केवल वर्तमान क्षण को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

५. शब्द—काल आदि की भिन्नता से शब्द के अर्थ-भेद को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

६. समभिरूढ़—शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ-भेद को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

७. एवंभूत—वर्तमान क्रिया के अनुसार ही शब्द के अर्थ को स्वीकार करने वाली दृष्टि।

कुछ ऋषि संश्लेषात्मक दृष्टिकोण से देखकर वस्तु की एकता का प्रतिपादन करते थे। कुछ विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखकर उसकी अनेकता का प्रतिपादन करते थे। भगवान् ने दोनों की सचाई को स्वीकार किया। सोमिल ने पूछा—'भंते ! आप एक हैं या अनेक ?' भगवान् ने कहा—'सोमिल ! मैं एक भी हूं और अनेक भी हूं। द्रव्य (संश्लेषात्मक पिंड) की दृष्टि से मैं एक भी हूं। पर्याय (विश्लेष धर्म) की दृष्टि से मैं अनेक भी हूं।'

महावीर ने कहा—'एक होना भी सत्य है और अनेक होना भी सत्य हैं। दोनों तभी सत्य हैं जब एक दूसरे से सापेक्ष हों। सापेक्षता का सूत्र जैसे ही टूटता है वैसे ही दृष्टिकोण मिथ्या हो जाते हैं। यह सापेक्षता ही महावीर का नयवाद है। स्याद्वाद में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्यात् शब्द का प्रयोग एक सत्यांश (धर्म) को शेष सत्य के साथ जोड़ता है और नयवाद में सापेक्षता का सूत्र एक सत्यांश को शेष सत्य के साथ जोड़ता है। निरपेक्ष एकांगी दृष्टिकोण सत्य नहीं होता। जहाँ सत्य नहीं होता, वहाँ अहिंसा नहीं हो सकती। सत्य के बिना अहिंसा नहीं हो सकती और अहिंसा के बिना सत्य नहीं हो सकता। दोनों एक साथ होते हैं। महावीर ने त्रैकालिक अवस्थाओं के योग्य पिंड को भी सत्य माना और वर्तमान पर्याय को भी सत्य माना। शब्द को भी सत्य माना और अर्थ को भी सत्य माना। उन्होंने किसी से नहीं कहा कि तुम असत्य हो, तुम्हारा विचार असत्य है। उन्होंने किसी से कुछ कहा तो यही कहा कि तुम सापेक्षता को समझ लो, दूसरों के दृष्टिकोण की सचाई को भी समझ लो। यदि ऐसा नहीं करोगे तो सम्भव है तुम भी असत्य हो जाओगे और तुम्हारे हाथ लगा सत्य भी असत्य हो जाएगा। अपने दृष्टिकोण की सचाई को दूसरों के दृष्टिकोण की सचाई से समन्वित करने का सूत्र महावीर की अहिंसा का, उनके स्वभाव का, उनकी वीतरागता का महान् सूत्र है। इससे समूची मानव-जाति का वर्तमान और भविष्य उज्ज्वल हो सकता है।

तत्त्व-दर्शन

भगवान् महावीर कैवल्य को प्राप्त कर द्रष्टा हो गए, दार्शनिक नहीं। दार्शनिक श्रुत और चिंतन से जानता है, देखता नहीं है। भगवान् ने स्वयं देखा और देखने के बाद कहा—'जो नहीं देखता, अपने भीतर नहीं देखता, अपने आपको नहीं देखता,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसे अपना ज्ञान नहीं होता। वह दूसरों के ज्ञान से जानता है—या तो श्रुत के ज्ञान से (सुने-सुनाए ज्ञान से) जानता है या चिंतन के ज्ञान से (मति के ज्ञान से) जानता है। किन्तु अपने आंतरिक बोध से नहीं जानता। जिसे अपना ज्ञान प्राप्त नहीं होता, उसे चारित्र प्राप्त नहीं होता। वह राग, द्वेष और मोह-रहित आचरण नहीं कर सकता। जिसे चारित्र प्राप्त नहीं होता, उसका मोक्ष नहीं होता। राग-द्वेष का क्षय होने पर ही मोक्ष होता है। जिसका मोक्ष नहीं होता, उसे निर्वाण उपलब्ध नहीं होता।'

इस निर्वाण की प्रक्रिया का पहला सूत्र दर्शन है। भगवान् ने कहा—'सत्य को देखो। मैं जो कहता हूं, केवल उसी के सहारे मत चलो। तुम स्वयं देखो।'

जीव और अजीव

इस विश्व में दो मूल तत्त्व हैं—जीव और अजीव। विश्व केवल चेतनात्मक नहीं है और केवल अचेतनात्मक भी नहीं है। यह चेतनाचेतनात्मक है। जीव और अजीव दोनों का अस्तित्व स्वतन्त्र है। जीव अजीव से उत्पन्न नहीं है और अजीव जीव से उत्पन्न नहीं है। जीव अनन्त हैं। प्रत्येक जीव दूसरे जीव से स्वतन्त्र है। अजीव के पांच प्रकार हैं—

१. धर्मास्तिकाय—गति का निमित्त।
२. अधर्मास्तिकाय—स्थिति का निमित्त।
३. आकाशस्तिकाय—आधारभूत तत्त्व।
४. काल—परिवर्तन का हेतु।
५. पुद्गल—स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवान् तत्त्व।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आश्रव और बंध

गौतम ने एक बार भगवान् से पूछा—'भंते ! जीव और अजीव में कोई परस्पर सम्बन्ध है ?' भगवान् ने कहा—'कोई भी तत्त्व सर्वथा सदृश नहीं होता और कोई भी तत्त्व सर्वथा विसदृश नहीं होता। जीव और अजीव में भी अनेक धर्मों का साम्य है, इसलिए जीव और अजीव परस्पर सम्पर्क स्थापित किए हुए हैं। जीव अजीव (पुद्गल) का भोग कर रहा है, अजीव जीव का भोग्य बना हुआ है। इस सम्पर्क का माध्यम जीव का अपना प्रयत्न है। वह अपने प्रयत्न से पुद्गलों को आकर्षित कर अपने साथ जोड़ता है। यह पुद्गलों को आकर्षित करने का प्रयत्न आश्रव और आकर्षित पुद्गलों का जीव के साथ एकीभाव बंध कहलाता है।'

दुःख-चक्र

बंध पुण्य या पाप के रूप में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करता है। शुभ प्रवृत्ति से बंधे हुए पुद्गलों की प्रतिक्रिया पुण्य के रूप में और अशुभ प्रवृत्ति से बंधे हुए पुद्गलों की प्रतिक्रिया पाप के रूप में प्रकट होती है। मनुष्य पुण्योदय के प्रति राग और पापोदय के प्रति द्वेष कर फिर आश्रव करता है। इस प्रकार आश्रव से बंध, बंध से फिर आश्रव, आश्रव से फिर बंध और फिर आश्रव—यह चक्र चलता ही रहता है। इस चक्र का नाम संसार है। इस चक्र में फंसा हुआ जीव जन्म, मृत्यु, जरा, रोग आदि शारीरिक और मानसिक दुःखों का वेदना करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुःख-चक्र से मुक्ति का उपाय

शरीर, इन्द्रिय, विषयों का ग्रहण—यह जीव का स्वाभाविक क्रम है। विषयों के प्रति राग और द्वेष होता है। इससे दुःख-चक्र को गति मिलती है। जिसे सम्यग्दृष्टि उपलब्ध हो जाती है वह दुःख-चक्र के मूल पर प्रहार करता है। विषयों को जानना, उनमें आसक्त न होना, राग-द्वेष न करना दुःख-चक्र के मूल पर प्रहार करना है। यह प्रहार दो दिशाओं से किया जाता है। एक दिशा है—नए कर्मों का बंध न करना—संवर करना और दूसरी दिशा है पुराने कर्मों को क्षीण करना—निर्जरा करना। इस संवर और निर्जरा की प्रक्रिया से नया बंध निर्मित नहीं होता और पुराना क्षीण होता है, जीव का मोक्ष होता है। बंध जितना क्षीण होता है उतना ही जीव मुक्त हो जाता है। बंध पूर्णतया क्षीण होता है तब जीव पूर्णतया मुक्त हो जाता है।

तत्त्व-दर्शन का प्रयोजन

धर्म की भूमिका में तत्त्व-दर्शन का प्रयोजन बौद्धिक व्यायाम नहीं है, केवल जानना नहीं है। उसका प्रयोजन है मोक्ष। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए भगवान् महावीर ने नव तत्त्व निरूपित किए—(१) जीव, (२) अजीव, (३) पुण्य, (४) पाप, (५) आस्रव, (६) संवर, (७) निर्जरा, (८) बंध, (९) मोक्ष। इनमें जीव और अजीव का निरूपण अस्तित्व की दृष्टि से है। शेष सात तत्त्व बंध और मोक्ष की प्रक्रिया के रूप में निरूपित हैं। आस्रव, बंध, पुण्य और पाप—ये चार तत्त्व दुःख-चक्र के हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। संवर और निर्जरा—ये दो तत्त्व दुःख-चक्र की मुक्ति के हेतु हैं। दुःख-चक्र से पूर्णतया विमुक्त हो जाने वाला मुक्त हो जाता है, आत्मा परमात्मा बन जाती है।

कर्म सिद्धान्त

भगवान् महावीर नें आत्मा की स्वतन्त्रता का प्रतिपादन किया। आत्मा किसी परमात्मा का अंश नहीं है। वह मुक्त होने के बाद परमात्मा में विलीन नहीं होती। बद्ध अवस्था में भी आत्मा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और मुक्त अवस्था में भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। बीसवीं शताब्दी के चिंतनशील मानस में भगवान् महावीर की प्रतिमा मानव-जाति के मुक्तिदाता के रूप में उभर रही है। उन्होंने मानव-जाति को परनिर्भरता की मृगमरीचिका से मुक्त किया था। स्वावलम्बन और पराक्रम की ज्योति से आलोकित पथ पर चलने की दृष्टि दी थी। ईश्वर को अपने भाग्य का नियंता मानने वाले उस पर निर्भर होकर बैठे थे। प्रकृति को नियंता मानने वाले उस पर निर्भर थे। भगवान् महावीर ने ईश्वर को अस्वीकार नहीं किया पर इसे अस्वीकार किया कि वह मनुष्य के भाग्य का नियंता है। भगवान् ने कहा—'मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का नियंता है। दूसरा कोई भी उसके भाग्य का नियंता नहीं है। कर्म भी उसके भाग्य का नियंता नहीं है। वह मनुष्य द्वारा कृत है। कृत का परिणाम भुगतने के लिए वह बाध्य है, पर इतना बाध्य नहीं कि उसमें कोई परिवर्तन न कर सके। जिसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है, उसका कर्तृत्व भी स्वतन्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। उसका उपादान अपने आप में होता है। दूसरे-दूसरे तत्त्व उसे प्रभावित कर सकते हैं पर उस (कर्तृत्व-शक्ति) को निर्वीर्य नहीं कर सकते।'

मनुष्य के कर्तृत्व को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व हैं, जैसे--काल, स्वभाव, नियति (जागतिक नियम) और कर्म। इनमें कर्म अधिक प्रभावी और निकट सम्बन्धी है। वह मनुष्य के अपने ही पुरुषार्थ से कृत होता है। पुण्य-कर्म के विपाक से मनुष्य को सुख मिलता है और पाप-कर्म के विपाक से उसे दुःख मिलता है। अपने किए हुए कर्म का फल उसे अवश्य भुगतना होता है, इस जन्म में या किसी भी जन्म में। उसे भुगते बिना उससे छुटकारा नहीं होता।

भगवान् महावीर ने कर्म की शक्ति को स्वीकार किया पर उसे सर्वोच्च शक्ति के रूप में मान्यता नहीं दी। यदि वे कर्म को सर्वोच्च शक्ति के स्थान पर प्रतिष्ठित करते तो ईश्वरीय सत्ता के अस्वीकार का सिद्धांत अर्थहीन हो जाता। वह केवल स्थानांतरण मात्र होता, ईश्वर के स्थान पर कर्म प्रतिष्ठित हो जाता, तात्पर्य में कोई अन्तर नहीं आता। आत्मा पर कोई नियंता होता, भले फिर वह ईश्वर हो या कर्म। भगवान् ने सर्वोच्च शक्ति को एक सीमित अर्थ में स्वीकृति दी।

पुरुषार्थ और धर्म की सापेक्ष-शक्ति

कर्म मनुष्य के इच्छा-स्वातंत्र्य को सीमित करता है और मनुष्य का पुरुषार्थ कर्म की शक्ति को सीमित करता है इसलिए पुरुषार्थ और कर्म की सापेक्ष व्याख्या की जा सकती है। पुरुषार्थ कर्म का जनक है और कर्म पुरुषार्थ का जन्य है। यदि कर्म की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति असीम हो तो पुरुषार्थ व्यर्थ हो जाता है। फिर पुराना कर्म उदय में आता है। उसके उदय से प्रभावित होकर मनुष्य नया कर्म करता है। फिर उदय और फिर बंध। इस चक्र में मनुष्य को कोई स्वतन्त्रता नहीं रहती। वह सर्वथा कर्म के अधीन हो जाता है। भगवान् महावीर अनेकांत के मंत्रदाता थे। वे सत्य को एक ही दृष्टिकोण से नहीं देखते थे। उन्होंने देखा कि कर्म मनुष्य का प्रभावित करता है, यह सत्य है। इस सत्य का दूसरा पहलू भी है कि मनुष्य का प्रबल पुरुषार्थ कर्म को प्रभावित करता है। दोनों के प्रभावों को सापेक्षदृष्टि से देखने पर यह निष्कर्ष सामने आता है कि कर्म मनुष्य की शक्ति को न तो निर्वाध होने देता है और न उसका सर्वांशतः अपहरण कर पाता है। कर्म का पूर्ण क्षय होने पर मनुष्य की ज्ञानशक्ति, वीतरागता और कर्मशक्ति सर्वथा निर्बाध हो जाती है। कर्म का सीमित क्षय या उपशम होता है तब मनुष्य की शक्ति कभी प्रकट होती है और कभी बाधित, फिर प्रकट और फिर बाधित। यह क्रम चलता रहता है। इस क्रम में कभी मनुष्य का वीर्य प्रबल होता है और कर्म का वीर्य दुर्बल, कभी कर्म का वीर्य प्रबल होता है और मनुष्य का वीर्य दुर्बल।

इस परिवर्तनशील स्थिति के आधार पर भगवान् महावीर ने कर्म के कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वे सिद्धान्त कर्म के विषय में प्रचलित एकांगी धारणाओं में संशोधन प्रस्तुत करते हैं। सामान्य धारणा है कि मनुष्य कर्म के अधीन है। जैसा भाग्य में लिखा है वैसा ही होता है। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। पुरुषार्थ का कोई मूल्य नहीं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये धारणाएं एकांगी होकर मिथ्या हो गई थीं। महावीर ने इन धारणाओं को अनेकान्त के सन्दर्भ में समझाया। उन्होंने कहा—मनुष्य कर्म के अधीन है, यह तभी सत्य हो सकता है जब हम इस वास्तविकता को न भुलाएं कि कर्म भी मनुष्य के पुरुषार्थ के अधीन है। जैसा भाग्य में लिखा होता है, वैसा ही होता है, यह तभी सत्य हो सकता है जब हम इस वास्तविकता को ध्यान में रखें कि पुरुषार्थ का मूल्यांकन न करने पर ही ऐसा होता है। यदि पुरुषार्थ का प्रयोग किया जाए तो भाग्य को बदला जा सकता है, कर्म के फल में परिवर्तन किया जा सकता है।

कर्म-परिवर्तन के चार सिद्धान्त

भगवान् महावीर ने कर्म-परिवर्तन के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किए—

१. उदीरणा—नियत समय से पूर्व कर्म का उदय में आना।

२. उद्वर्तन—कर्म की अवधि और फलशक्ति में वृद्धि होना।

३. अपवर्तन—कर्म की अवधि और फलशक्ति में कमी होना।

४. संक्रमण—एक कर्म प्रकृति का दूसरी कर्म प्रकृति में संक्रान्त होना।

क कार्म उदय समय पर ही नहीं होता, उससे पहले भी हो सकता है। यदि उसका उदय नियत समय पर ही हो तो कर्मवाद एक प्रकार का नियतिवाद ही हो जाता है। नियतिवाद में पुरुषार्थ की सार्थकता नहीं होती। उसकी व्यर्थता होने पर आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं होता। भगवान् महावीर ने बताया कि मनुष्य अपने आंतरिक प्रयत्न से बंधे हुए कर्म की अवधि को घटा भी सकता है और बढ़ा भी सकता है। उसकी फल-शक्ति को मन्द या तीव्र कर सकता है। इस प्रकार नियत समय से पूर्व कर्म भोगा जा सकता है। तीव्र फल वाले कर्म को मन्द फल वाले के रूप में और मन्द फल वाले को तीव्र फल वाले के रूप में भोगा जा सकता है। पुण्य-कर्म के परमाणुओं का पाप के रूप में और पाप-कर्म के परमाणुओं का पुण्य के रूप में संक्रमण किया जा सकता है।

कर्म के इस सिद्धान्त ने मनुष्य को निराशा, अकर्मण्यता और पराधीनता की मनोवृत्ति से बचाया। यदि वर्तमान का पुरुषार्थ सत् हो तो अतीत के अशुभ कर्म-संकारों को क्षीण कर या शुभ में बदलकर मनुष्य अन्धकार में प्रकाश ला सकता है। अकर्मण्य मनुष्य प्रमाद में जाकर संभावित अच्छाइयों और उपलब्धियों से वंचित हो जाता है। सिर पर हाथ रखकर बैठने से कुछ नहीं होता। सत् पुरुषार्थ करने से समस्या अपने आप समाहित हो जाती है। मनुष्य कर्म के अधीन नहीं है। कर्म उसकी अधीनता का निमित्त है। निमित्त कारण अपना प्रभाव प्रदर्शित करता है। पर निमित्त आखिर निमित्त ही होता है। वह उपादान का स्थान नहीं ले सकता। यदि मनुष्य जागृत हो तो वह निमित्त के रूप में आने वाली कम की अधीनता को निष्फल बना सकता है।

कर्म-परिवर्तन के सिद्धान्त को नहीं जानने वाले सामाजिक व्यवस्था के बदल जाने पर कर्म के सिद्धान्त में सन्देह करने लग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute; Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाते हैं। कर्म व्यक्ति की आंतरिक परिस्थिति है। बाहरी परिस्थितियों और निमित्तों से उसके फलोदय में कुछ परिवर्तन हो सकता है पर उसकी वास्तविकता विनिष्ट नहीं होती। व्यक्ति में सुख-दुःख के वेदन की आंतरिक क्षमता होती है तभी सुख-दुःख के साधन उसकी सुख-दुःख की अनुभूति में निमित्त बन सकते हैं। केवल परिस्थितियों और निमित्तों के परिवर्तन के आधार पर व्यक्ति की समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। उनका समाधान व्यक्ति के कर्म और कर्म को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के आधार पर ही किया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्वाण

भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विहार करते हुए पावा में पहुंचे। राजा हस्तिपाल और उसकी प्रजा ने भगवान् को वंदना की। भगवान् ने उन्हें निर्वाण का रहस्य समझाया। वे निर्वाण के सर्वाधिक शक्ति-सम्पन्न प्रवक्ता थे। प्रवचन के बाद भगवान् ने गौतम को बुलाकर कहा—'गौतम! यहाँ से कुछ दूरी पर सोमशर्मा ब्राह्मण रहता है। वह तत्त्व का जिज्ञासु है। तुम्हारा उपदेश पाकर वह प्रतिबुद्ध होगा। तुम वहाँ जाओ और उसे प्रतिबुद्ध करो।'

गौतम भगवान् के वचन को शिरोधार्य कर सोमशर्मा को प्रतिबोध देने चले गए।

भगवान् दो दिन से उपवास कर रहे थे। जल भी नहीं ले रहे थे। उन्होंने इन दिनों में बहुत लम्बे प्रवचन किए। उनमें कर्मफल का विस्तार से विवेचन किया। अपना प्रवचन सम्पन्न कर भगवान् मौन हो गए। वे पद्मासन में बैठे थे। उनका शरीर स्थिर और शान्त हो गया। वे इस स्थूल शरीर के साथ साथ सूक्ष्म शरीर से भी मुक्त हो गए। जन्म और मृत्यु की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शृंखला उनसे विच्छिन्न हो गई। ज्योति केवल ज्योति रह गई।

कार्तिक कृष्णा अमावस्या[1] के उषाकाल (चार घड़ी शेष रात्रि) में भगवान् का निर्वाण हुआ। उस समय भगवान् के पास सुधर्मा आदि अनेक साधु थे। मल्ल और लिच्छवि गणराज्य के अठारह राजे भी वहाँ उपस्थित थे। उस अवसर पर उन्होंने दीप जलाकर ज्योति से ज्योति की प्रशस्ति की।

भगवान् के निर्वाण का संवाद सब जगह फैल गया। भगवान् के बड़े भाई नंदिवर्धन को इसका पता चला। वे व्यथित हो गए। निर्वाण परम प्रसन्नता का विषय है पर संसारी मनुष्य वियोग के व्यवहार को भी भुला नहीं सकता।

गौतम स्वामी को सूचना मिली कि भगवान् का निर्वाण हो गया। वे स्तब्ध रह गए। उनका सम्बन्ध अटूट था। भगवान् को पाकर गौतम की चेतना ने त्राण का अनुभव किया और गौतम को पाकर भगवान् की चेतना ने आधार पा लिया। गौतम को भगवान् के शरीर में भी राग था। वे उसका वियोग नहीं चाहते थे। भगवान् की उपस्थिति में उनका राग क्षीण नहीं हुआ। वे कैवल्य को प्राप्त नहीं कर सके। निर्वाण का संवाद सुनने के साथ-साथ एक बार राग ने तीव्र आक्रमण किया। वे अपने आपको भूल गए, साधारण जन की भांति विह्वल हो गए। किन्तु यह सब क्षणिक था। वे महाज्ञानी थे और श्रुत सागर के पारगामी तत्त्वद्रष्टा। उन्होंने तीस वर्ष तक भगवान्

१· गुजराती परम्परा के अनुसार आश्विन कृष्णा अमावस्या।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का सान्निध्य साधा था। उन्होंने अपनी जिज्ञासा को दर्शन के विकास में नियोजित किया। भगवती सूत्र आज भी उसका साक्ष्य दे रहा है। इतना बड़ा ज्ञानी पुरुष शोक नहीं कर सकता। वे तत्काल मुड़े। भगवान् की वीतराग प्रतिमा उनकी आंखों के सामने आ गई। उनका राग क्षीण हो गया। वे वीतराग बन गए। कैवल्य ने उनका वरण कर लिया। अब वे भगवान् के साथ अभिन्न हो गए।

बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण होने पर भगवान् का निर्वाण हुआ। वे तीस वर्ष घर में रहे, साढ़े बारह वर्ष साधना में रहे और तीस वर्ष केवली। गौतम और सुधर्मा जैसे महाप्रज्ञ उनके शिष्य थे। वे अस्सी वर्ष की अवस्था में थे। फिर भी भगवान् के प्रति पूर्ण विनम्र और सर्वात्मना समर्पित। निर्वाण के समय भगवान् का शिष्य-परिवार बहुत बड़ा था और बहुत समृद्ध।

भगवान् राजकुल में जन्मे। वैभव में पले-पुषे। जैसे-युवा बने वैसे ही उनका समत्व-चक्षु विकसित हुआ। वे समता की साधना में लगे। उसमें सिद्ध प्राप्त की। वे जनता के बीच रहे। उन्होंने जनता को शान्ति, समता और अनेकान्त का मार्गदर्शन दिया। उनका दर्शन केवल व्यक्ति के लिए नहीं, समाज के लिए भी है। उनका धर्म केवल परलोक के लिए नहीं, वर्तमान लोक के लिए भी है। उनकी आधार-पद्धति से आन्तरिक समस्याएं ही नहीं सुलझतीं, समाज-व्यवस्था की समस्याएं भी सुलझती है। उनकी अहिंसा कायर की अहिंसा नहीं है। वह योद्धा की अहिंसा है। अभय और पराक्रम उसके साथ जुड़े हुए हैं। उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निवृत्ति अकर्मण्यता नहीं है। वह कर्म के परिष्कार की अजेय शक्ति और मानसिक शक्ति का महान् साधन है। आज भी उनकी वाणी में विश्व-शान्ति के पथ-दर्शन की क्षमता है, इसलिए हम सब उनके प्रति प्रणत हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन और उद्बोधन

१. जावन्त विज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा।
लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारंमि अणंतए॥ (उ०६।१)

—जितने अविद्यावान् पुरुष हैं, वे सब दुःख को उत्पन्न करने वाले हैं। वे दिग्मूढ़ की भांति मूढ़ बने हुए इस अनन्त संसार में बार-बार दुःख का सृजन करते हैं।

२. जहा सुई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न बिणस्सई॥
(उ० २९।५९)

—जिस प्रकार धागे में पिरोई हुई सुई गुम नहीं होती, उसी प्रकार स्वाध्यायशील पुरुष नष्ट नहीं होता।

३. इमा विज्जा महाविज्जा, सव्वविज्जाण उत्तमा।
जं विज्जं साहइत्ताणं, सव्वदुक्खाण मुच्चति॥ (इ०७।१)

—वही विद्या महाविद्या और सब विद्याओं में श्रेष्ठ है, जिसकी साधना कर व्यक्ति सब दुःखों से मुक्त हो जाए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४. जेण तच्चं विबुज्झेज्ज, जण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।
(मूला० ५।७०)

—जिससे पदार्थ जाना जाता है, जिससे चंचल चित्त का निरोध होता है, जिससे आत्मा की विशुद्धि होती है, जैन शासन में उसे ही ज्ञान कहा है ।

५. जेण रागा विरज्जेज्जा, जेण सेएसु रज्जदि ।
जेण मित्तिं पभाविज्ज, तं णाणं जिणसासणे ।।
(मूला० ५।७१)

—जिससे राग का विनयन होता है, जिससे श्रेय की ओर गति होती है, जिससे मैत्री-भाव बढ़ता है, जैन शासन में उसे ही ज्ञान कहा है ।

६. जं अन्नाणी कम्मं, खवेदि भवसयसहस्सकोडिहिं ।
तं णाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ अंतोमुहुत्तेण ।।
(भ० आ० ११०)

—अज्ञानी मनुष्य जन्म की प्रलम्ब शृंखला में जिन कर्म-संस्कारों को क्षीण करता है, उन्हें ज्ञानी और ध्यानी मनुष्य एक मुहूर्त मात्र में क्षीण कर डालता है ।

७. जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियतई ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ।।
(उ० १४।२४)

—जो-जो रात बीत रही है, वह लौटकर नहीं आती । अधर्म करने वाले की रात्रियां निष्फल चली जाती हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥
(उ० १४।२५)

—जो-जो रात बीत रही है वह लौटकर नहीं आती । धर्म करने वाले की रात्रियां सफल होती हैं ।

९. वदणियमाणि धरंता, सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विदंति ॥
(समयसार १५३)

—जो परमार्थशून्य हैं वे व्रतों और नियमों को धारण करते हुए तथा शील और तप का आचरण करते हुए भी निर्वाण को प्राप्त नहीं होते ।

१०. एगो मे सासदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।
सेसा में बाहिरा भावा, सव्वे संजोगलक्खणा ॥
(नियमसार ९९)

—ज्ञान-दर्शन लक्षण वाली मेरी आत्मा ही शाश्वत है । शेष जितने पदार्थ मेरे साथ जुड़े हैं वे सब मुझसे भिन्न हैं—अशाश्वत हैं ।

११. अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदुं धम्मो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं ॥
(भाव पाहुड़ ८३)

—आत्मा का आत्मा में रमण करना तथा राग आदि समस्त दोषों का छूट जाना ही धर्म है । यही संसार से पार उतरने का हेतु है । भगवान् ने ऐसा कहा है ।

१२. सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता
ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा । (आ० ४।२३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—सब प्राणियों, भूतों, जीवों और सत्वों का हनन मत करो। उन पर शासन मत करो।

१३. एयं खु णाणिणो सारं, जं ण हिंसइ कंचणं।
अहिंसा समयं चेव, एयावंतं वियाणिया॥
(सू० १।१।४।१०)

—ज्ञानी होने का यही सार है कि वह किसी की हिंसा न करे। अहिंसा का सिद्धान्त इतना ही है कि जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी दुःख प्रिय नहीं है। ऐसा जानकर साधक किसी को न मारे।

१४. जह ते ण पियं दुक्खं, तहेव पि जाण जीवाणं।
एयं णच्चा अप्पोवमिओ, जीवेसु होहि सदा॥
(अ० आ० ७८०)

—जैसे तुम्हें दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही दूसरे जीवों को भी दुःख प्रिय नहीं है। यह जानकर तुम उन जीवों के साथ वैसा ही हितकर व्यवहार करो, जैसा तुम उनसे अपेक्षा करते हो।

१५. जीववहो अप्पवहो जीवदया होदि अप्पणो हु दया।
विसकंटओव्व हिंसा, परिहरिदव्वा तदो होदि॥
(भ० आ० ७९७)

—किसी भी प्राणी का वध अपनी आत्मा का ही वध है। किसी भी प्राणी की दया अपनी आत्मा की ही दया है। इसलिए हिंसा का विष और कंटक के समान परिहार करना चाहिए।

१६. लाभोत्ति न मज्जेज्जा।
अलाभोत्ति ण सोयए॥ (आ० २।४।११४, ११५)

—लाभ होने पर गर्व मत करो। लाभ न होने पर शोक मत करो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइअं होइ, इइ केवलि भासियं ।।
(अनु० ७०८, गा० २)

—जो त्रस और स्थावर—सब जीवों के प्रति सम होता है, उसी के सामायिक (समता की साधना) होता है। यह केवली ने कहा है।

१८. सामाइय माहु तस्स जं,
जो अप्पाण भए ण दंसए ।। (सू० १।२।२।१७)

—समत्व की अनुभूति वही कर सकता है, जो कहीं भी भय नहीं देखता।

१९. सम्मं मे सव्वं-भूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि।
आसाए वोसरित्ताणं, समाहिं पडिवज्जए ।।
(मूला० २।४२)

—समस्त प्राणियों के प्रति मेरे मन में समत्व का भाव है, किसी के प्रति वैर भाव नहीं है। आशा का परित्याग कर मैं समाधि—समत्व को ग्रहण करता हूं।

२० रायबंधं पदोसं च हरिसं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं, रदिमरदि च वोसरे।।
(मूला० २।४४)

—समत्व की साधना के लिए मैं राग, द्वेष, प्रसन्नता, दीनता, उत्सुकता, भय, शोक, विषाद, आनन्द का परित्याग करता हूं।

२१. ममत्ति पडिवज्जामि. णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा, अवसेसाइ वोसरे।।
(मूला० २।४५)

—मैं निर्ममत्व होकर ममत्वभाव का परिहार करता हूं। अब इस साधना में आत्मा ही मेरा आलंबन है। शेष सबका मैं विसर्जन करता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२. जह मम न पियं दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
न हणइ न हणावइ य, सममणती तेण सो समणो ॥
(अनु० ७०८ गा० ३)

—जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे ही सब जीवों को दुःख प्रिय नहीं है। यह जानकर जो किसी का वध नहीं करता और नहीं करवाता, सबके प्रति सम रहता है, इसलिए वह श्रमण है।

२३. समणो समसुहदुक्खो, भणिदो सुद्धोवओगोत्ति ।
(प्रव० १।१४)

—जो सुख-दुःख में सम है, वही श्रमण है। वही शुद्ध उपयोग में वर्तमान है।

२४. आगमहीणो समणो, णेवप्पाणं परं वियाणादि ।
(प्रव० ३।३२)

—आगमज्ञान से शून्य श्रमण न स्वयं को जान पाता है और न दूसरों को।

२५. आगमचक्खू साहू, इन्द्रियचक्खूणि सव्वभूदाणि ।
(प्रव० ३।३४)

—श्रमण की आंख है केवल आगम। शेष सभी प्राणी इन्द्रिय-चक्षु वाले होते हैं। श्रमण आगम की आंख से देखता है, शेष प्राणी इन चर्म चक्षुओं से।

२६. दंसणणाणचरित्तेसु तीसु जुगवं समठ्ठिदो जो दु ।
एयग्गदो त्ति मदो, सामण्णं तस्स पडिपुण्णं ॥
(प्रव० ३।४२)

—जो साधक दर्शन, ज्ञान और चारित्र—इन तीनों में एक साथ एकाग्रता से प्रवृत्त होता है, उसका श्रामण्य ही परिपूर्ण होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । (आ० ३।३।६५)

—पुरुष ! तू सत्य का ही आचरण कर ।

२८. सच्चस्स आणाए उवट्ठिए से मेहावी मारं तरति ।
(आ० ३।३।६६)

—जो सत्य की आज्ञा में उपस्थित है, वह मेधावी मृत्यु को तर जाता है।

२९. सच्चं लोगम्मि सारभूयं । (प्रश्न० २।२)

—सत्य ही लोक में सार है ।

३०. रागेण व दोसेण व मोहेण व मोसभासपरिणामं ।
जो पजहइ साहु सया बिदियवयं होइ तस्सेव ॥
(णि० सा० ५७)

—साधु वही है जो रागद्वेष या मोहवश भी असत्य वचन की भावना कभी नहीं करता। यथार्थ में वैसे मुनि के ही दूसरा महाव्रत (सत्य महाव्रत) होता है।

३१. माया व होइ विस्ससणिज्जो पुज्जो गुरुव्व लोगस्स ।
पुरिसो हु सच्चवाई होदि हु सुणिउल्लओ व्व पिओ ॥
(म० आ० ८३७)

—सत्यवादी पुरुष माता की भांति विश्वसनीय, गुरु की भांति जनता द्वारा पूजनीय और विद्वान् की भांति प्रिय होता है ।

३२. सच्चं हि तवो सच्चम्मि संजमो तह य सेसया वि गुणा ।
सच्चं णिबंधणं हि य गुणाणमुदधीव मच्छाणं ॥
(भ० आ० ८४२)

—सत्य ही तप है । सत्य में ही संयम और शेष सभी गुण समाहित हैं। जैसे समुद्र मछलियों का आश्रय-स्थल है, वैसे ही सत्य सभी गुणों का आश्रय-स्थल है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३३. होदु सिहंडी व जडी मुंडी वा णग्गओ व चीरधरो।
जदि भणदि अलियवयणं, विडंबणा तस्स सा सव्वा ॥
(भ० आ० ८४३)

—कोई शिखाधारी हो, जटाधारी हो, मुंड हो, नग्न हो या वस्त्रधारी हो, यदि वह असत्य वचन वोलता है तो उसकी वह सारी साधना विडंबना है, प्रवंचना है।

३४. सक्का सहेउं आसाए कंटया, अओमया उच्छहया नरेणं।
अणासए जो उ सहेज्ज कंटए, वईमए कण्णसरे स पुज्जो ॥
(द० ९।३।६)

—पुरुष धन आदि की आशा से लोहमय कांटों को सहन कर लेता है परन्तु जो किसी प्रकार की आशा रखे विना कानों में पैठते हुए वचन-रूपी कांटों को सहन करता है, वह पूज्य है।

३५. अपुच्छिओ न भासेज्जा, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाएज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥
(द० ८।४६)

—विना पूछे न बोले, बीच में न बोले, चुगली न खाए और कपटपूर्ण असत्य का वर्जन करे।

३६. अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो।
सव्वसो तं न भासेज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥
(द० ८।४७)

—जिससे अप्रीति उत्पन्न हो और दूसरा शीघ्र कुपित हो, ऐसी अहितकर भाषा सर्वथा न बोले।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३७. आलियादिणियत्ती वा मोणं वा होदि वचोगुत्ती ।
(मूला० ३३२)

—असत्य वचन से निवृत्ति अथवा मौन धारण करना वाक्-संयम है ।

३८. हिदमिदवयणं भासदि, संतोसकरं तु सव्वजीवाणं ।
(कार्ति० ३३४)

—साधक सब जीवों के लिए हितकर और सन्तोषकर वाणी बोलता है । वह अल्पभाषी होता है ।

३९. अक्कोसेज्ज परो भिक्खुं, न तेसिं पडिसंजले ।
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले ।।
(उ० २।२४)

—कोई मनुष्य भिक्षु को गाली दे, तो वह उसके प्रति क्रोध न करे । क्रोध करने वाला भिक्षु बालकों (अज्ञानियों) के सदृश हो जाता है, इसलिए भिक्षु क्रोध न करे ।

४०. समणं संजयं दन्तं, हणेज्जा कोई कत्थई ।
नत्थि जीवस्स नासु त्ति, एवं पेहेज्ज संजए ।।
(उ० २।२७)

संयत और दान्त श्रमण को कोई कहीं पीटे तो वह 'आत्मा का नाश नहीं होता'—ऐसा चिन्तन करे, पर प्रतिशोध की भावना न लाए ।

४१. जहक णयमग्गितवियं पि, कणयभावं ण तं परिच्चयई ।
तह कम्मोदयतविदो, ण जहदि णाणी दु णाणितं ।।
(समय० १८४)

—स्वर्ण अग्नि से तप्त होने पर भी स्वर्णत्व को नहीं छोड़ता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष कर्म-विपाक से तप्त होने पर भी ज्ञानित्व को नहीं छोड़ता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४२. चोरस्स णत्थि हियये दया य लज्जा दमो य विस्सासो।
चोरस्स अत्थहेदुं णत्थि अकादव्वयं किं पि॥

(भ० आ० ८६२)

—चोर के मन में न दया और न लज्जा होती है; न संयम और न विश्वास होता है। धन को पाने के विषय में चोर के लिए कुछ भी अकार्य नहीं हैं।

४३. लोभे य वड्ढिए पुण कज्जाकज्जं णरो ण चिंतेदि।
तो अप्पणो वि मरणं अगणंतो साहसं कुणादि॥

(भ० आ० ८५७)

—लोभ के बढ़ने पर मनुष्य करणीय और अकरणीय का चिन्तन नहीं करता। वह अपने मृत्यु की भी परवाह न करता हुआ धन पाने के लिए दु:साहस कर बैठता है।

४४. जंमि य आराहियंमि, आराहियं वयमिणं सव्वं।
सीलं तवो य विणओ य, संजमो य खंती गुत्ती मुत्ती॥

(प्र० ६।३)

– ब्रह्मचर्य की आराधना करने पर सब व्रत आराधित हो जाते हैं— शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, ध्यान और अनासक्ति —ये सब सध जाते हैं।

४५. विसएसु मणुंन्नेसु, पेमं नाभिनिवेसए।
अणिच्चं तेसिं विन्नाय, परिणामं पोग्गलाण उ॥

(द० ८।५८)

– शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श—पुद्गलों के इस परिणमन को अनित्य जानकर ब्रह्मचारी मनोज्ञ विषयों में राग-भाव न करे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६. जीवो बंभा जीवम्मि चेव चरिया हवेज्ज जा जदिणो।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्कपरदेहवित्तिस्स ॥
(भ० आ० ८७७)

—आत्मा ही ब्रह्म है। आत्मा में ही चर्या करना ब्रह्मचर्य है। जो साधक पर-देह से विमुक्त होकर चर्या करता है वही सच्चा ब्रह्मचारी है।

४७. कामादुरो णरो पुण कामिज्जंते जणे दु अलहंते।
घत्तदि मरिदुं बहुधा मरुप्पवादादि करणेहिं ॥
(भ० आ० ८८९)

—कामातुर व्यक्ति जब अपनी अभिलषित वस्तु को पानेमें असमर्थ होता है तब वह विविध उपायों से आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो जाता है।

४८. सूरग्गी डहदि दिवा रत्तिं च दिवा य डहइ कामग्गी।
सूरस्स अत्थि उच्छागारो कामग्गिणो णत्थि ॥
(भ० आ०)

—सूर्य की अग्नि केवल दिन में ही जलाती हैं, किन्तु काम-वासना की अग्नि दिन और रात—दोनों में जलाती है। सूर्य के आतप से बचने का उपाय भी है, किन्तु काम के आतप से बचने का कोई उपाय नहीं है।

४९, जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥
(उ० ८।१०)

—जैसे लाभ होता है वसे ही लोभ होता है। लाभ से लोभ बढ़ता है। दो माशे सोने मे पूरा होने वाला कार्य करोड़ से भी पूरा नहीं हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५०. पुढवीसालीजवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ।।

(उत्त० ६।४६)

—पृथ्वी, चावल, जौ, सोना और पशु—ये सब एक की भी इच्छापूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं हैं, यह जानकर तप का आचरण करे।

५१. जह इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं ।
तह जीवस्स य तित्ती नत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि ।।

(भ० आ० ११४३)

—जैसे इंधन से अग्नि की और हजारों नदियों से लवण समुद्र की तृप्ति नहीं होती, वैसे ही तीन लोक की सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर भी जीव को तृप्ति नहीं होती।

५२. गंथच्चाओ इंदिय-णिवारणे, अंकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य इंदियगुत्ती असंगत्तं ।।

(भ० आ० ११६८)

—जिस प्रकार हाथी के नियन्त्रण के लिए अंकुश होता है उसी प्रकार इन्द्रियों के नियन्त्रण के लिए अपरिग्रह है। जिस प्रकार नगर की रक्षा के लिए खाई होती है उसी प्रकार इन्द्रियगुप्ति के लिए अपरिगृह है।

५३. लोभो तणे विजादो जणेदि पावमिदरत्थ किं वच्चं ।
रइद मुउडादिसंगस्स वि हु ण पावं अलोभस्स ।।

(भ० आ० १३७१)

—मूल्यवान् वस्तु की तो बात ही क्या, एक तुच्छ तिनके के प्रति रहा हुआ ममत्व-भाव भी पाप पैदा करता है। जो ममत्व-रहित है, वह मुकुट आदि परिग्रह से युक्त होने पर भी पाप से स्पृष्ट नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५४. कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए।
पए पए विसीयंतो, संकप्पस्स वसं गओ ॥
(द० २।१)

—जो मनुष्य संकल्प के वश हो पद-पद पर विषाद-ग्रस्त होता है और काम—विषय-राग का निवारण नहीं करता, वह श्रमणत्व का पालन कैसे करेगा ?

५५. बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।
(भाव पाहुड १३)

—जिस साधक के आभ्यन्तर ग्रन्थि विद्यमान् है, उसका बाह्य त्याग व्यर्थ है।

५६. संकप्पमओ जीओ, सुखदुक्खमयं हवेइ संकप्पो।
(कार्ति० १८४)

—जीव संकल्पमय है। संकल्प सुख-दुःखात्मक होता है।

५७. चरदि जदं जदि णिच्चं, कमलं व जले णिरुवलेवो।
(प्रव० ३।१८)

—जो यतनापूर्वक कार्य करता है, वह जल में कमल की भाँति निरुपलेप होता है।

५८. सीलेण विणा विसया, णाणं विणासंति। (शीलपाहुड़ २)

—शील (संयम) के बिना इन्द्रिय-विषय ज्ञान को विकृत कर देते हैं।

५९. सीलं मोक्खस्स सोवाणं। (शीलपाहुड़ २०)

—संयम मोक्ष का सोपान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६०. सुजणो वि होइ लहुओ, दुज्जसंभेलणाए दोसेण ।
माला वि मोल्लगरूया, होदि लहू मडयसंसिट्ठा ।।
(भ० आ० २४५)

—दुर्जन (असंयमी) व्यक्ति की संगति करने से सज्जन (संयमी) व्यक्ति भी तुच्छता को प्राप्त होता है । उसका महत्त्व घट जाता है । जैसे कि बहुमूल्य वाली माला भी मुर्दे का आश्रय पाकर तुच्छ हो जाती है ।

६१. सुत्ता अमुणी सया ।
मुणिणो सया जागरंति ।। (आ० ३।१)

—अज्ञानी सदा सोता है, ज्ञानी सदा जागता है ।

६२. पंच जागरओ सुत्ता, पंच सुत्तस्स जागरा ।
पंचहिं रयमादियति, पंचहिं च रणं चए ।।
(इ० २६।२)

—जो जागता है उसके पांच (इन्द्रिय) सोते हैं और जो सोता है उसके पांच जागते हैं । जागे हुए पांचों के द्वारा मनुष्य अपने आपको बांधता है और सोए हुए पांचों के द्वारा वह अपने आपको खोलता है ।

६३. जागरंतं मुणिं वीरं, दोसा वज्जेंति दूरओ ।
जलंतं जातवेयं वा, चक्खुसा दाहभीरुणो ।।
(इ० ३५।२३)

—जो जागता है, उसके दोष दूर रहते हैं । जैसे जलती हुई आग से सब दूर रहते हैं ।

६४. जागरह णरा णिच्चं, जागरमाणस्स वड्ढते वुड्ढी ।
जो सुवति ण सो धण्णो, जो जग्गति सो सया धण्णो ।।
(बृ० भा० ३३८२)

—तुम सदा जागो । जो जागता है उसकी बुद्धि बढ़ती है । जो सोता है, वह भाग्यहीन है । जो जागता है, वह धन्य है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६५. सुयइ य अयगरभूओ, सुयं च से नासई अमयभूयं ।
होहिइ गोणब्भूओ, नट्ठम्मि सुए अमयभूए ।।
(बृ० भा० ३३८७)

—जो अजगर की भांति निश्चिन्त पड़ा रहता है, उसका अमृततुल्य ज्ञान नष्ट हो जाता है और उसके नष्ट होने पर वह निरा बैल बन जाता है ।

६६. जो सुत्तो ववहारे, सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे, सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ।।
(मोक्षपाहुड़ ३१)

—जो योगी व्यवहार में सोता है वह स्व-कर्म — आत्म-कार्य में जागता है । जो व्यवहार में जागता है वह आत्म-कार्य में सोता है ।

६७. जम्मं मरणेण समं, संपज्जइ जुव्वणं जरासहियं ।
लच्छी विणाससहिया, इय सव्वं भंगुरं मुणइ ।।
(कार्तिकेयानुप्रेक्षा ५)

—जन्म के साथ मरण, यौवन के साथ बुढ़ापा और सम्पत्ति के साथ विनाश सदा लगा रहता है । इस प्रकार संसार के सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं ।

६८. धीरेण वि मरिदव्वं णिद्धीरेणवि अवस्स मरिदव्वं ।
जदि दोहिं वि मरिदव्वं, वरंहि धीरत्तणेण मरिदव्वं ।।
(मूलाचार २।१००)

—धैर्यशाली भी मरता है और कायर भी मरता है । जब दोनों की मृत्यु अवश्यंभावी है तब अच्छा यही है कि मैं संक्लेशरहित होकर धीरता-पूर्वक मृत्यु का वरण करूं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६९. सीलेणावि मरिदव्वं, णिस्सीलेणावि अवस्स मरिदव्वं।
जइ दोहिं वि मरियव्वं, वरं हु सीलत्तणेण मरियव्वं ॥
(मूलाचार २।१०१)

—आचारवान् भी मरता है और अनाचारी भी मरता है। जब दोनों की मृत्यु अवश्यंभावी है तब अच्छा यही है कि मैं आचारवान् होकर ही मृत्यु का वरण करूं।

७०. णत्थि भयं मरणसमं जम्मणसमं ण विज्जदे दुक्खं।
जम्मणमरणादंकं छिंदि ममत्तिं सरीरादो ॥
(मूलाचार २।११९)

—मृत्यु के समान दूसरा कोई भय नहीं है। जन्म के समान कोई दुःख नहीं है। साधक ! तू जन्म और मरण—दोनों को नष्ट कर दे। शरीर के होने पर ये दोनों होते हैं अतः तू शरीर से ममत्व हटा ले।

७१. न भाइयव्वं भयस्स वा वाहिस्स वा रोगस्स व जराए।
वा मच्चुस्स वा अण्णस्स वा एवमादियस्स ॥
(प्र० ७।२०)

—भयपूर्ण परिस्थिति से मत डरो, व्याधि से मत डरो, शीघ्रघाती रोग से मत डरो, बुढ़ापे से मत डरो, मौत से मत डरो—किसी से भी मत डरो।

७२. सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अप्पमत्तस्स नत्थि भयं।
(आ० ३।७५)

—प्रमत्त को सब ओर से भय होता है। अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं होता।

७३. भीतो अवितिज्जओ मणूसो। (प्र० ७।२०)।

—डरा हुआ मनुष्य अपने को अकेला अनुभव करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७४. णारतिं सहते वीरे, वीरे णो सहते रतिं।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे ण रज्जति ॥

(आ० २।६।१६०)

—वीर पुरुष उच्छृंखला को सहन नहीं करता, परतंत्रता को भी सहन नहीं करता। वह अपने आप में प्रसन्न रहता है। इसलिए वह किसी भी प्रलोभन में नहीं फंसता।

७५. जहा कुम्मे स अंगाइं सए देहे समाहरे।
एवं पावेहिं अप्पाणं, अज्झप्पेण समाहरे ॥

७६. साहरे हत्थपाए य, मण सव्विंदियाणि य।
पावगं च परिणामं, भासादोसं च पावगं ॥

७७. अणु माणं च मायं च, तं परिण्णाय पंडिए।
सुतं मे इहमेगेसिं, एयं वीरस्स वीरियं ॥

(सू० १।८।१६-१८)

—जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने शरीर में समेट लेता है, वैसे ही अपने मन को अपने आप में समेट लेना, हाथ, पैर, मन, इन्द्रिय, चित्तवृत्ति और वाणी का संयम करना, अहं और प्रवंचना का परित्याग करना, वीर का वीर्य है और इसी कारण वह वीर कहलाता है।

७८. केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी।

(नियमसार ९६)

—ज्ञानी यह चिंतन करे कि मैं अनन्तशक्ति-सम्पन्न हूं।

७९. दोहिं अंगेहिं उप्पीलितेहिं आता जस्स ण उप्पीलती।
रागंगेय दोसेय, से हु सम्मं णियच्छति ॥

(इ० ४४।१)

—जिसकी आत्मा राग और द्वेष की पीड़ा से पीड़ित नहीं होती, वही मनुष्य सही निश्चय कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८०. जे अज्झत्थं जाणइ, से बहिया जाणइ।
जे बहिया जाणइ, से अज्झत्थं जाणइ। (आ० १।७।१४७)

—जो अध्यात्म (अपने) को जानता है, वह बाह्य (पराए) को जानता है। जो बाह्य को जानता है, वह अध्यात्म को जानता है।

८१. तिमिरहरा जइ दिट्ठी, जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा, विसया किं तत्थ कुव्वंति॥
(प्रव० १।६७)

—यदि दृष्टि तम को हरने वाली है तो फिर मनुष्य को दीपक से क्या प्रयोजन?

आत्मा स्वयं सुखमय है, फिर विषय उसे क्या सुख देंगे?

८२. जेसिं विसएसु रदी, तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं णहि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं॥
(प्रव० १।६४)

—जिन लोगों की विषयों में रुचि है, उनमें दुःख स्वाभाविक है। यदि उनमें दुःख स्वाभाविक न हो तो उनकी विषयों में प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

८३. णिंदामि णिंदणिज्जं, गरहामि य जं च मे गरहणीयं।
आलोएमि य सव्वं, सब्भंतर - बाहिरं उवहिं॥
(मूला० २।५५)

—मैं निन्दनीय की निन्दा और गर्हणीय की गर्हा करता हूं। मैं अभ्यन्तर और बाह्य—समस्त उपाधि की आलोचना करता हूं।

८४. जा गदी अरहंताणं, णिट्ठिदट्ठाणं च जा गदी।
जा गदी वीयमोहाणं, सा मे भवदु सस्सदा॥
(मूला० २।१०७)

—जो गति अर्हतों को प्राप्त हुई है, जो गति सिद्धों को प्राप्त हुई है, जो गति वीतरागों को प्राप्त हुई, वही शाश्वत गति मेरी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८५. जहा जुन्नाइं कट्ठाइं, हव्ववाहो पमत्थति ।
एवं अत्त-समाहिए अणिहे ॥ (आ० ४।३।३३) ॥

—जैसे अग्नि जीर्ण काष्ठ को शीघ्र जला डालती है, वैसे ही समाहित आत्मा वाला तथा अनासक्त साधक कर्म शरीर को प्रकम्पित, कृश और जीर्ण कर डालता है।

८६. जे इह सायाणुगा णरा, अज्झोववण्णा कामेहिं मुच्छिता ।
किवणेण समं पगब्भिया, ण वि जाणंति समाहिमाहियं ॥
(सू० १।२।५८)

—सुख के पीछे दौड़ने वाले, आसक्त, काम-मूर्च्छित और कृपण के समान ढीठ मनुष्य समाधि को नहीं जान पाते।

८७. झाणणीलीणो साहू, परिचागं कुणइ सव्वदोसाणं ।
तम्हा दु झाणमेव हि, सव्वदिचारस्स पडिक्कमणं ॥
(नियमसार ६३)

—ध्यान में लीन साधु सब दोषों का परित्याग करता है, इसलिए ध्यान ही सब दोषों का प्रतिक्रमण है—उपचार है।

८८. जो झायइ अप्पाणं, परमसमाही हवे तस्स ॥
(नियमसार १२३

—जो आत्मा का ध्यान करना है, उसे परम समाधि प्राप्त होती है।

८९. जिदरागो जिददोसो जिदिंदिओ जिदभओ जिदकसाओ ।
रदि-अरदि-मोह-महणो, झाणोवगओ सदा होइ ॥

—ध्यान-कोष्ठ—समाधि में गया हुआ मुनि राग, द्वेष तथा इन्द्रियों पर विजय पा लेता है। उसका भय नष्ट हो जाता है, कषाय टूट जाते हैं। वह रति, अरति और मोह का विनाश कर डालता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi